ISSN : 2321-3922
अप्रैल– 2020
BIHHIN05394
वर्ष – 5 अंक–20

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

अप्रैल–जून – 2020

प्रकाशन : 27 जनवरी 2013

RNI No. : BIHHIN05394/2015

ISSN - 2321-3922

वर्ष–5, अंक–20

अप्रैल–जून – 2020

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्रीमती प्रतिभा सिन्हा

सम्पादक मंडल
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
अश्विनी प्रजावंशी
कुन्दन अमिताभ

संस्थापक सदस्य
श्रीमती छाया पाण्डेय
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

अनुक्रम

पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	05
समीक्षा	भावों की सशक्त अभिव्यक्ति, भाषा का सरल प्रवाह	डॉ. सीमा शर्मा	06
ग़ज़ल	ग़ज़लें	शशी आनन्द अलवेला	08
समीक्षा	कथाकार जयन्त की कहानियों का अनुशीलन	रोशनी कुमारी	09
समीक्षा	सांस्कृतिक विरासत को बचाती हुई कहानियाँ	प्रो० मकेश्वर रजक	13
समीक्षा	सूखती संवेदना को सींचती कविताएँ	अरविंद अवस्थी	15
कविता	मैंने बस यूँ ही ठिठककर	किशोर कुमार अग्रवाल	16
समीक्षा	पाठांतर के मर्मस्पर्शी विविध रंग	डॉ0 शशि प्रकाश चौधरी	17
गज़लें	ग़ज़लें	केशव शरण	18
आलेख	सकारात्मक से नकारात्मक मिलता है	सुभाषचन्द्र झा	19
कविता	आया बसंत, गजलें	प्रिया देवांगन प्रियु, अंजनी कुमार सुमन	24
समीक्षा	मेरी कहानियाँ : अनछुए पहलुओं की झलक	डॉ.अरुण कुमार वर्मा	25
कविताएँ	अँधेरे के साये में, सर्दी की रात, एकांत में	सदाशिव कौतुक,	26
आलेख	राष्ट्रनायक शहीद भगत सिंह	डॉ0. अमर सिंह बधान	27
कविता	हिन्दी	भोला प्रसाद मंडल 'भ्रमर'	28
आलेख	अभावों और अन्तर्भावों के बीच रचनाधर्मिता	डॉ मंजरी पंडेय	29
परखें	कुसम अंसल के कथा साहित्य में चित्रित समलैंगिकता	प्रो. गजानन हरिमाउ	30
गीत	अंगमहाजनपद गौरवगाथा	लक्ष्मी नारायण मधुलक्ष्मी	31
आलेख	वास्तविक विजेता वही है, जो दैवी लक्ष्यों को भी समझे	सीताराम गुप्ता	32
कविताएँ	मानवता के स्वर मंद हैं, एक देश मेरे अंदर	रोहित प्रसाद पथिक	33
आलेख	राष्ट्रभाषा हिन्दी की विकास यात्रा	आलोक भारती	34
गीत/कतिवा	मन शैशव, भाई कहकर बुला के तो देखो	अमोद कुमार मिश्र	35
कहानी	बेरोजगार	राजा सिंह	36
कहानी	उसका लौटना	डॉ आशा पुष्प	39
कविताएँ	तुम्हारे इश्क के घर, देना एतबार तुम	मंजुला उपाध्याय मंजुल	40
समीक्षा	यंग्य का लोकतांत्रिक हस्तक्षेप	डॉ. सुभाष चन्द्र गुप्त	41
समीक्षा	अंजुरी भर रौशनी	दयानन्द जायसवाल	45
वार्ता	आलोचना का भविष्य उज्ज्वल है	अनिल कुमार पाण्डेय	46
कविताएँ	नेह का निमंत्रण, रामचरण, मुद्दतों के बाद	डॉ अवधेश चन्सौलिया	49
आलेख	कोरोना को जाने	बिरजू कुमार	50
लोकवाणी	लोकवाणी		

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के 92 शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि जुलाई–सितम्बर– 2020 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से सम्पर्क पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

बहादुर बनो

चूँकि तुम सीधे–सादे आदमी हो
दयालु और रोमांटिक जीव हो
तुमने नेताओं का भरोसा कर लिया
उनकी बातों में विश्वास कर लिया
चूँकि तुम सीधे–सादे और विनम्र हो
तुम्हें दूसरी बार भी धोखा खाना पड़ा
इसलिए, अब लड़ो, बहादुर बनो
बेरहम और बेदर्द बनो
और मर्दानगी से
अपने काम को अंजाम दो
अनावश्यक युद्ध में लड़ना पाप है
बहादुरी पाप है, विजय भी पाप है
लेकिन हारना उससे भी बड़ा पाप है।

जफर्स

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

साहित्य की पहचान का वास्तविक आधार आज भी मानव मूल्य ही है। साहित्य ही मानवीय संस्कृति, सभ्यता एवं व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है। मानव–मूल्यों की स्थापना साहित्यकार से इस बात की अपेक्षा रखती है कि वह साहित्यिक मूल्यों को भी उतना ही समादर प्रदान करे, जितना मानव मूल्यों की; क्योंकि तत्त्वतः दोनों एक ही है। साहित्य में जीवन–मूल्य मात्र कल्पना से जन्म नहीं लेते, बल्कि साहित्यकार के अनुभूत सत्य भी होते हैं जो उसकी आत्मोपज प्रक्रिया में स्थापित होकर अपनी सुंदरता, महत्ता और उदारता के कारण समाज द्वारा जीवन मूल्यों के रूप में स्वीकार किये जाते हैं। साहित्य हमारे अव्यक्त भावों को व्यक्त करता है। मानव साहित्य और समाज के बाहर जी नहीं सकता। साहित्य जिन मानव मूल्यों को ग्रहण कर उसके स्वरूप को अभिव्यक्त करता है, वे ही साहित्यिक मूल्य कहलाते हैं। इसलिए मानव–मूल्य और साहित्यिक मूल्य वस्तुतः सामान्य है।

साहित्य ने मनुष्य की विचारधारा को एक नई दिशा प्रदान की है। आधुनिक युग के मानव जीवन और उनसे संबंधित दिनचर्या को तो हम स्वयं अनुभव कर सकते हैं, परन्तु यदि हमें प्राचीन काल के जीवन के बारे में अपनी जिज्ञासा को पूर्ण करना है, तो हमें तत्कालीन साहित्य का ही सहारा लेना पड़ता है। समय के साथ आज वैश्वीकरण व उदारीकरण ने हमारे समाज को गहरे तक झकझोरा है। उसकी प्रतिछाया साहित्य में सिद्दत से उभरती हैं यह प्रवृत्ति स्वाभाविक भी है। संक्रमणकालीन समाज का अक्स साहित्य में उभरता है। इक्कीसवीं सदी के आरंभ से ही हिन्दी साहित्य में युवाओं की रचनाशीलता को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। यह विस्फोट कितना गुणात्मक है और कितना परिमाणात्मक, विचार करने की बात है। इस कालखंड में स्त्री–प्रेम, उसका सौंदर्य–प्रणय निवेदन तथा दलित साहित्य की रचनात्मक भागीदारी में पर्याप्त इजाफा हुआ है। गद्यात्मक कविता हो, चाहे मानवीय संवदेना शून्य कहानी हो, रचना समष्टि या व्यष्टि के अंतर को समझे बिना भी अभिव्यक्त हो रही है। यह भी सच है कि इन रचनाकारों को सामने लाने में पत्रिकाओं का अहम योगदान है। हो सकता है यह चुनौती पत्रिका और संपादक के मूल्यांकन की कसौटी हो, अपने दौर के नये रचनाकारों को सामने लगाने का, किन्तु संपादक का भी यह एक मुख्य दायित्व होता है कि नये रचनाकारों, नई रचनाशीलता की खूबियों को पहचानना, उसके साथ कदम–ताल मिलाते हुए भी उसकी सीमाओं को रेखांकित करना। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि वर्तमान की नयी रचनाशीलता ही भविष्य की मुख्य रचनाशीलता का स्थान लेती है। यह भी सच है कि प्रत्येक लेखक की एक अलग प्रक्रिया होती है। इसलिए बिना चिंता के रचनाकार अलग–अलग तरीकों से रचना कर सकते हैं, कोई सही या गलत तरीका नहीं। परिवर्तन प्रकृति में समाहित है, किन्तु बस आपको अपना खुद का अद्वितीय दृष्टिकोण ढूँढ़ना होगा; क्योंकि अपने विचार, भावनाओं, ज्ञान, सहानुभूति को साझा करना ही साहित्यकार का दायित्व है।

साहित्य मानव के मस्तिष्क का भोजन है, वैचारिक चेतना के विकास का सूचक है तथा भाव का आदर्श है या परोक्ष में कहें, तो साहित्य मानव सभ्यता के विकास का सारसूत्र है। नहीं भूलना चाहिए कि साहित्य अंतःकरण की औषधि है। यह ऊपर–झापर के विरुद्ध बहुत गहराई में जाकर बहुस्तरीय संघर्ष करता है। वह पाठक की बौद्धिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानसिक चेतना के विरेचन का उद्यम करता है, जो साहित्य यह नहीं कर पाता, वह धीरे–धीरे अप्रासंगिक हो जाता है। आज हम जिस कालखंड में हैं, वहाँ साहित्य की कलात्मकता का प्रश्न भी एकांगी नहीं है। आज वही साहित्य कलात्मक माना जा सकता है, जो मुकम्मल योगदान का हिमायती है। सकारात्मक की ओर उन्मुख होकर आस्थावादी साहित्य के सृजन की ओर अग्रसर है, तभी हमारा साहित्य सत्य भी होगा, शिव भी होगा और सुंदर भी होगा।

वैश्विकता के युग में लेखक वैश्विक होना चाहते हैं, परन्तु हर युग में लेखक की यही कामना रही है, पर स्थानीयता में भी विश्व जन्म लेता है। संसारभर की स्थानीयता ने वैश्विकता रची है, पर नया लेखक उसका प्रमाण विदेशी रचनाओं, वस्तुओं, मुहावरों, उद्धरणों से देना चाहते हैं, जिसे वह अपना विस्तार समझ रहा है, वह ज्ञान या जानकारी की स्थूलता है और आत्मप्रदर्शन का सरलीकरण। इन सब बातों से सर्जना में वैश्विकता की सर्जना नहीं होती। इस तरह के प्रदर्शन से ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक भारतीय लेखकों को नहीं पढ़ते हैं। एक बात जान लें, अगर अपनी भाषा के लेखकों का आप नहीं पढ़ रहे हैं, तो आपका कौन और क्यों पढ़ेगा या आप किस समाज के भीतर वैश्विकता का प्रदर्शन करेंगे। आज हमारे जीवन में संवेदना की जगह सूचना ने ले ली है। यह जानते हुए भी कि सूचना संसार ने हमारे संसार को इतना कुछ दिया है, जिसकी कोई सानी नहीं है, हम उसके ऋणी हैं, परन्तु उसने मानवता की जो सबसे ज्यादा क्षति की है, वह यह है कि हमारी संवेदना को कुंठित कर दिया है, सुख–दुःख के सघन अतिवाद से हमारे अनुभव जगत् को, हमारे स्पर्श, घ्राण और ऐन्द्रिय संवेदना के मौलिक केन्द्रों को निष्प्रभावी कर दिया है। आज दुनिया बहुत तरह की चुनौतियों का सामना कर रही है, इकलौती मुश्किल नहीं है। जिस तेजी से धरती की आवोहवा बदल रही है, उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि दुनिया बहुत तेजी से खातमें की ओर बढ़ रही है। आज हम डिजिटल वर्ल्ड में जी रहे हैं, जहाँ सोशल मीडिया का बोलवाला है, इसके द्वारा आज दुनिया एक सूत्र में बँध गई है। कोई भी तकनीक तभी तक ठीक है, जबतक उसका सही इस्तेमाल किया जाए, ताकि लोग एक दूसरे पर और तमाम जानकारियों पर यकीन कर सकें। ग्लोबलाइजेशन की वजह से आज लगभग सारी दुनिया के लोग एक देश से दूसरे देश में जाते हैं। अफसोस की बात है कि खुबियाँ कम और बीमारियाँ अधिक फैल रही हैं। चाहे मानव मूल्य की बात हो या महामारी की। एक समय था, जब जीका, ईबोला, स्पेनिश फ्लू का आतंक था, आज कोरोना वायरस का है, जो एक बड़ी चुनौती है। जरूरत है इन मुश्किलों से निपटने के लिए पूरी दुनिया एक जुट हो और इसका भी कोई तरीका इजात करें। आज इंसानियत का पहिया भी तेल और कोयले से दौड़ रहा है। इंसान के शरीर में होनेवाली सभी क्रियाओं का डिजिटाइजेशन करने की तैयारी की जा रही है, जो एक मोबाईल फोन पर संगृहीत हो जाएगी। किन्तु विचार और विवेक की कसौटी पर खरी उतरनेवाली विशेषता मनुष्य अस्तित्व की सार्थकता सिद्ध करने, उसमें मनुष्यता तथा सामाजिकता का भाव जगाने में है। मनुष्यता के माध्यम से ही जातीयता, सांप्रदायिकता, प्रांतीयता, अंधराष्ट्रीयता संबंधी विचारों को समाप्त किया जा सकता है।

समाज में हितकारी परिवर्तन लाने के संदर्भ में साहित्यकार के योगदान को हम भुला नहीं सकते। साहित्य और साहित्यकार को सामाजिक परिवर्तन के लिए जाने–अनजाने प्रतिबद्ध होना होगा तथा सर्जना की मूलभूत प्रेरणा को बनाए रखने में प्रतिबद्धता की दृष्टि श्रेष्ठतम दायित्व अदा कर सकती है।

समीक्षा

भावों की सशक्त अभिव्यक्ति भाषा का सरल प्रवाह

डॉ. सीमा शर्मा,
शास्त्रीनगर, मेरठ (उ. प्र.),
मो.–09457034271

'खिड़कियों से झाँकती आँखें' सुधा ओम ढींगरा का सातवाँ कहानी संग्रह है। इन सभी कहानी संग्रहों को पढ़ने के बाद स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि आपकी कहानियाँ भारत और अमेरिका के बीच एक ऐसे पुल का निर्माण करती हैं, जिस पर चलकर आप इन दोनों देशों के सामाजिक और सांस्कृतिक ताने–बाने बहुत बारीकी से समझ सकते हैं। आप चीजों को व्यापक परिदृश्य में देखते हैं और इस प्रक्रिया में आपके कई पूर्वाग्रह ध्वस्त हो जाते हैं। यह प्रक्रिया किसी एक कहानी में नहीं, बल्कि कहानी–दर– कहानी चलती रहती है। समीक्ष्य संग्रह की पहली कहानी खिड़कियों से झाँकती आँखें से लेकर अंतिम कहानी 'एक नई दिशा' तक आते–आते आपकी धारणा और अधिक पक्की होती जाती है।

संग्रह की प्रतिनिधि और प्रथम कहानी खिड़कियों से झाँकती आँखें अत्यंत संवेदनशील है। इस कहानी में आँखें प्रतीक हैं, उन वृद्धों की, जिनकी संतानें सफलता की राह पर आगे बढ़ गईं और ये बहुत पीछे छूट गए। अब ये आँखें स्नेह एवं प्रेम की एक किरण जहाँ दिखाई दे, उसी से चिपक जाना चाहती हैं, लेकिन यही आँखें कथा नायक डॉ. मलिक को असहज कर देती हैं; क्योंकि वह इनकी सच्चाई नहीं जानता। डॉ. खान उसे इनकी सच्चाई बताते हुए कहता है–यंग मैन! इन आँखों से डरने की जरूरत नहीं, इनको दोस्ती का चश्मा चाहिए, पहना दो, चिपकना बंद कर देंगी। (पृष्ठ –१६) डॉ. मलिक को बहुत जल्दी ये बात समझ आ जाती है और वह कहता है – मैं जान गया कि सहारे को तलाशती ये आँखें किसी भी अजनबी में अपनापन ढूँढ़ने लगती हैं। (पृष्ठ –१७)

इस कहानी में कई आयाम हैं। एक ओर अपनी जड़ों से कटकर स्वयं को कहीं और स्थापित करना। अपनी जड़ें जमाने और वहीं रच–बस जाने के बाद आप ही की तरह आपकी अगली पीढ़ी कहीं किसी देश में अपनी दुनिया बसा लेती है। अब आप नितांत अकेले हो जाते हैं, इसलिए एक बार पुनः अपने देश लौटने की चाह उत्पन्न होना स्वाभाविक है, लेकिन तब वहाँ आपके पास कोई स्थान शेष नहीं रह जाता। यह ऐसा ही है, जैसे किसी पौधे को निकालकर कहीं और रोप दिया जाये, तो कुछ समय के बाद वहाँ उस पौधे के लिए कोई स्थान शेष नहीं रह जाता। ऐसा भी हो सकता है कि उस पौधे के स्थान पर कोई और पौधा उगे एवं वृक्ष बन जाये। डॉ. मलिक देश की धरती में लगे पौधे को उखाड़कर हमने विदेश की धरती में बो दिया। पहले पहल उसे बहुत मुश्किलों का सामना करना पड़ा, फिर धरती और पौधे दोनों ने एक दूसरे को स्वीकार कर लिया (पृष्ठ –२१) जब पौधा वृक्ष बन गया तो हमने उसे उखाड़कर फिर पुरानी धरती में लगाने ले गए। जिन रिश्तों के लिए पौधा विदेश में वृक्ष बना, उन्हीं रिश्तों ने स्वार्थ की ऐसी आँधी चलाई कि वृक्ष के सारे पत्ते झड़ गए, टुंड–मुंड हो गया वह। पुरानी धरती और टुंड–मुंड हुए वृक्ष, दोनों ने एक दूसरे को स्वीकार नहीं किया और रोप दिया हमने विदेश की धरती पर वह वृक्ष एक बार फिर। इस धरती ने उसे पहचान लिया और सीने से लगा लिया। (पृष्ठ –२१)

सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में यह बात बार–बार उभरकर सामने आती है कि स्वदेश में रहने से सब बहुत अच्छे और विदेश में रहने से बुरे नहीं बन जाते। न ही उन संस्कारों को भूलते हैं, जो उन्हें परिवार और समाज से मिले और जो भूल जाते हैं या स्वार्थी बन जाते हैं, ऐसे अपवाद कहीं भी हो सकते हैं। किसी के व्यक्तित्व निर्माण में देश विशेष का प्रभाव तो अवश्यंभावी है, लेकिन और भी अनेक कारक हो सकते हैं। समीक्ष्य संग्रह की दूसरी कहानी 'वसूली' में ऐसे ही एक विषय को उठाया गया है। ''वसूली'' कहानी सत्तर के दशक से नब्बे के दशक तक जाती है, इसमें लेखिका ने हरि और सुलभा के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है कि प्रवासी भारतीय या अपनी भारतीयता, देश और परिवार से कितना लगाव रखते हैं, जबकि भारत में रहनेवाले कितने भारतीय ऐसे हैं, जिनके लिए उनका स्वार्थ सर्वोपरि है। शंकर और उमा को उस मनोवृत्ति के प्रतीक के रूप में देखा जा सकता है। हरि मोहन अमेरिका में रहकर भी अपने परिवार को सुखी और प्रसन्न देखना चाहता है। विदेश जाकर बसने के पीछे भी यही कारण था, लेकिन हरि के लिए जो सच्चाई थी, शंकर के लिए वह निरी भावुकता। शंकर के शब्दों में हरि, तुम शुरू से ही भावुक थे, विदेश जाकर तो भावनात्मक बेवकूफ बन गए हो। हरि के लिए शंकर का यह व्यवहार आश्चर्यजनक था, तभी तो वह कहता है–कहाँ गई आपकी मर्यादा! कहाँ गया आपका संस्कार! विदेश में तो मैं रहता हूँ और समुद्र का खारापन आपकी आँखों पर छा गया है। (पृष्ठ–26)

हरि भारत में जन्मा, छह भाई–बहनों के बीच अत्यंत गरीबी में पला–बढ़ा। बहुत मेहनत करके पढ़ाई की। संभवतः इसलिए उसका व्यक्तित्व एक भावुक और उदार व्यक्ति के रूप में निर्मित हुआ, जबकि उन्हीं परिस्थितियों के बीच पले–बढ़े उसके बड़े भाई शंकर का व्यक्तित्व ठीक उलटा दिखाई देता है। जबकि बचपन में वह भी हरि की ही तरह अत्यंत संवेदनशील था। ऐसे में क्या इसे मात्र व्यक्तिगत भिन्नता के रूप में देखा जा सकता है या संगत भी एक कारक रूप में रही होगी। लेखिका ने इस ओर संकेत किया है। शंकर के व्यवहार का उसके परिवार पर जो असर है, वह उसके समूचे परिवार पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। एक माँ का अपने ही बेटे से डरना और अपनी व्यथा को इस तरह व्यक्त करना उमा उसे भड़काती रहती है, अब बार–बार एक ही बात करता है, मैं, मेरी पत्नी मेरा परिवार है और बाकी सब यानी बहन–भाई आपकी गृहस्थी हैं। (पृष्ठ–27) वह समझ नहीं पाती उससे क्या गलती हो गई, वह बेटा जो सारे विश्व को अपना परिवार समझता था, अब सबको अलग कैसे समझने लगा।

यह कहानी वैसे तो सम्पत्ति के लालच में एक परिवार के बिखराव की कहानी है, लेकिन इसके छोटे–से कथ्य में व्यापक गहराई है। लेखिका ने एक परिवार की समस्या के माध्यम से मानवीय व्यवहार का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। इसका विस्तार दिल्ली से लेकर अमेरिका तक है। समीक्ष्य कहानी इस भ्रम को भी तोड़ती है कि सुसंस्कार और उदार व्यक्तित्त्व स्वदेश में रहकर ही हो सकते हैं, उदाहरण के रूप में सुलभा एवं हरि जैसे पात्रों को देखा जा सकता है, विशेष रूप से सुलभा के चरित्र को। यदि सुलभा का चरित्र उमा जैसा होता तो हरि का व्यक्तित्त्व निश्चित ही कुछ और होता। बहुत संभावना इस बात की थी कि वह भी कि शंकर के जैसा स्वार्थी होता। सुलभा का जन्म अमेरिका में होने के बाद भी वह भारतीयों से अधिक भारतीय है, जबकि उमा सत्तर के दशक में जो मान–मर्यादा, सामाजिक पाबंदियाँ और परिस्थितियाँ थीं, उनके ठीक विपरीत बर्ताव करती है। उमा और शंकर भौतिकता के आकर्षण में एक अंधी दौड़ का हिस्सा बन जाते हैं।

समीक्ष्य संग्रह की तीसरी कहानी एक गलत कदम वृद्ध आश्रम और परिचयाग्रह के एक दृश्य के साथ शुरू होती है, जहाँ दयानंद शुक्ला एवं

शकुंतला शुक्ला को उनके दो पुत्र और अन्य पुत्र वधुओं ने यहाँ तक पहुँचाया है। यह 'एडल्ट लिविंग एंड नर्सिग होम' लिखित रूप में तो सबके लिए है, लेकिन अघोषित रूप से यह केवल भारतीयों के लिए और इसमें सूक्ष्म भारत की झलक मिलती है। सारे डॉक्टर, नर्स, सेवक–सेविकाएँ और कर्मचारी भारतीय हैं। हर गृह में एक मंदिर भी होता है। हर प्रदेश का भारतीय भोजन यहाँ दिया जाता है और भारतीय माहौल उत्पन्न किया जाता है। अप्रवासी भारतीयों के अंदर जो भारत बसता है, वृद्धाश्रम उसी का प्रतिबिम्ब है। यह उन लोगों का आश्रय स्थल बन जाता है, जो किन्हीं कारणों से भारत नहीं जा पाते और अपने परिवार के साथ भी नहीं रह पाते। सभी सुख–सुविधाओं से सम्पन्न यह वृद्ध आश्रम भारतीय बुजुर्गों में बहुत लोकप्रिय है। यह एक ऐसा स्थल है, जहाँ उन्हें अहसास हो कि वे भारत में ही रह रहे हैं। इस अहसास से उन्हें सुख की अनुभूति होती है। चारों ओर भारतीय! शोर–शराबा, संयुक्त परिवार–सा खान–पान, सुबह–शाम घंटियों की आवाज, शंखनाद, भारतीय–संगीत, धूमधाम से मनाये जाते भारतीय उत्सव। ढलती उम्र में जन्मभूमि बहुत याद आती है, बस ऐसे गृहों में उसे ही मुहैया करवाने की कोशिश की जाती है। (पृष्ठ–45) विशेष बात यह है कि इसका निर्माण भी एक भारतीय 'डॉ. सुमंत हीरादास पटेल' ने कराया था।

इस कहानी का बहुत बड़ा भाग पूर्वदीप्ति शैली (फ्लैश बैक) में आगे बढ़ाता है। यह कहानी एक ओर सजातीय और विजातीय होने के भ्रम को तोड़ती है और इस तथ्य को स्थापित करती है कि अच्छे–बुरे लोग देश–विदेश सब जगह होते हैं और अपवाद कहीं भी हो सकते हैं। डॉ. शरद शुक्ला और डॉ. जैनेट शुक्ला जैसे पात्रों के माध्यम से लेखिका ने कई पूर्वाग्रहों को तोड़ने का कार्य किया है। इस कहानी में उन्होंने इस धारणा को भी ध्वस्त किया है कि यूरोपीय देशों में संयुक्त परिवार नहीं होते या उनके बीच वैसी परवाह, स्नेह और सामंजस्य नहीं होता जैसा कि भारत में।

सुधा ओम ढींगरा ने ऐसा भी होता है, कहानी में एक ऐसे विषयों को उठाया है, जिस पर हम या तो ध्यान नहीं देते या देना नहीं चाहते। समाज में दहेज की समस्या पर खूब बात होती है, लेकिन लेखिका ने समीक्ष्य कहानी में इससे ठीक विपरीत एक विषय को उठाया है। कहानी पात्रात्मक शैली में लिखी गयी है। इसकी मुख्य पात्र दलजीत कौर के माध्यम से लेखका ने उन सभी स्त्रियों की पीड़ा को शब्द दिये हैं, जो अपना 'मायका' (एक ऐसा घर जो सामान्यतया उनका होता ही नहीं) बचाने के लिए अपनी सामर्थ्य से अधिक प्रयास करती हैं, लेकिन अंततः उन्हें निराशा ही हाथ लगती है। कहानी भले विदेश में बसी बेटी को लेकर बुनी गयी है, लेकिन यह समस्या सार्वदेशिक कही जा सकती है। कहानी में उस मानसिकता पर प्रहार है, जहाँ सारा प्यार–दुलार तो बेटों के हिस्से आता है, लेकिन सारी अपेक्षाएँ बेटियों से। कथा नायिका दलजीत कौर के माध्यम से लेखिका ने प्रश्न किया है–आप सबके दिल में मेरा सिर्फ इतना ही स्थान है कि मैं आपकी अपेक्षाएँ पूरी करने के लिए बनी हूँ। आप लोगों के जीवन और दिलों में मेरा और कोई महत्त्व नहीं। (पृष्ठ –६२) कहानी में एक सहज प्रश्न है कि बच्चों के जन्मने की एक जैसी प्रक्रिया के बाद या धरती पर आते ही भेदभाव कैसे शुरू हो सकता है? उससे भी बड़ा प्रश्न कि एक माँ कैसे भेदभाव कर सकती है? बीजी, जैसे आप वीरों को सीने से लगाती हैं, कभी आपने अपनी धीयों (बेटियों) को भी सीने से लगाया। क्यों नहीं लगाया? हम तो आपकी ही हैं, आपकी जाति की। बाउजी और चाचाजी ऐसा करें तो मैं मान सकती हूँ, वे पुरुष हैं, वीर उनकी जाति के हैं, पुरुष प्रवृत्ति ऐसी ही होती है। अफसोस तो इसी बात का है, स्त्री ही अपनी जाति के साथ गद्दारी करती है। (पृष्ठ–63) दलजीत अक्सर महसूस करती थी, हमारे घर में कुड़ियाँ आँगन के फूल नहीं बस ऐंवई पैदा हुई खरपतवार हैं। सारा प्यार ,दुलार और सारी सुख–सुविधाएँ तो वड्डे वीर जी और छोटे वीरे के लिए हैं। (पृष्ठ –63)

मायके की निरंतर मदद करनेवाली दलजीत का एक बार उनकी मदद न कर पाना या वह भी जानबूझकर नहीं, वरन् उसके घर से आये एक पत्र के न मिल पाने के कारण। लेकिन यही कारण उसके मोहभंग का भी है। दलजीत की वेदना को इन पंक्तियों में स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा सकता है –पिछले ग्यारह महीने की चिट्ठियों ने तो मेरे अहसासों को और पुख्ता कर दिया। आपके दिल में कुड़ियों का कोई महत्त्व है ही नहीं। आपके लिए वे कठपुतलियाँ हैं जैसे चाहे नचा लो... मुझे दोनों वीरों से कोई ईर्ष्या नहीं, बस बीजी के भेदभाव से ऐतराज है और निराशा भी है या जिन्होंने हर बच्चे को नौ महीने पेट में पालकर, एक जैसा कष्ट सहा। पर बाहर आते ही शिशु लड़का–लड़की बन गया और भेदभाव का सिलसिला उसी क्षण से शुरू हो गया, जब बच्चे की आँख ही खुली। (पृष्ठ –63)

लेखिका ने दलजीत के पिता के रूप में एक ऐसे पात्र को गढ़ा है, जिनके लिए बेटियाँ उनके सपनों को पूरा करने का माध्यम मात्र हैं। दलजीत की पीड़ा के माध्यम से लेखिका ने उस समूचे वर्ग पर व्यंग्य किया है, जो अपनी बेटियों को परदेश में केवल इसलिए ब्याहते हैं कि उनके सपने पूरे हो सकें। इन सपनों के बीच उपेक्षित हुई लड़कियों की मनोदशा को लेखिका ने बहुत मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है–बाऊजी जिसने यह रिश्ता करवाया, उसने आपके साथ धोखा किया है। यहाँ डॉलर उगते नहीं, कमाने पड़ते हैं, कड़ी मेहनत से...इस परिवार ने मुझे अहसास दिलवाया की मैं सिर्फ एक स्त्री नहीं, इंसान भी हूँ और मुझे भी सोचने और कहने का हक है, जो आपके घर में मुझे कभी नहीं मिला (पृष्ठ–65)

'कॉस्मिक की कस्टडी' कहानी की कथावस्तु की बात की जाये तो दो पंक्तियों में आ सकती है। माँ (मिसेज रॉबर्ट) और बेटे (ग्रेग) कॉस्मिक की कस्टडी के लिए केस लड़ते हैं। जैसा की हम जानते हैं कि हर केस में कुछ टूटता है या छूटता है। लेकिन यहाँ इसके ठीक विपरीत स्थिति है। यह केस न केवल एक माँ–बेटे के रिश्ते में निकटता लाता है, वरन् भावात्मक रूप से भी उसे सुदृढ़ बनाता है। यह इस कहानी की खूबी है। यहाँ कहानी की कथावस्तु का संकेत नहीं किया जा रहा है, क्योंकि इस कहानी को पढ़ने का जो आनंद है, वो कम हो सकता है।

संग्रह की छठी कहानी 'यह पत्र उस तक पहुँचा देना' को सतही ढंग से देखने पर तो 'जैनेट और विजय' की प्रेम कहानी है, किंतु लेखिका ने इस कहानी के द्वारा दो देशों की राजनीतिक व्यवस्था, समाजगत ढांचा एवं इन व्यवस्थाओं में विभिन्न विभेद जिनके कारण कई तरह की जटिलताएँ उत्पन्न होती हैं। घटिया राजनीति, नस्लवाद और रंगभेद के कारण दो भोले–भाले लोगों का जीवन समाप्त होना, इससे दुखद क्या हो सकता है? राजनीति एवं राजनेताओं की स्थिति लगभग सभी जगह एक जैसी है।

'अँधेरा–उजाला' समीक्ष्य–संग्रह की एक अनूठी कहानी है। जब आप इसे पढ़ते हैं, तो अनायास ही आपको चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' याद आने लगती है। मोटे तौर पर दोनों कहानियों में कोई साम्य नहीं है। कथावस्तु, पात्र, देशकाल और परिस्थितियाँ सब कुछ अलग है; लेकिन इन दोनों कहानियों में कुछ तो ऐसा है, जो भावनात्मक स्तर एक समता इनमें दिखने लगती है। 'उसने कहा था' का लहना सिंह और 'अँधेरा–उजाला' कहानी का मनोज दोनों ही पात्र एक ही धरातल पर खड़े दिखाई देते हैं। लहना सिंह अपनी प्रेयसी के लिए मृत्यु का वरण करता है, तो मनोज अपनी फैन इला से किये वादे को जीवन पर्यन्त निभाता है, क्योंकि किसी फैन ने उससे वादा लिया था, इसलिए वह निरंतर रियाज करता है और गाता है कि वह दुनिया के किसी भी कोने में रहे उसकी गायकी सुनती रहे। इसके अतिरिक्त इस कहानी में और भी कई आयाम हैं। कहानी की कथावस्तु कई दशक पहले के परिवेश से

शुरू होती है, उस समय जाति और वर्ग–भेद की खाई अब से कहीं अधिक गहरी थी। कथा नायिका का बाल मन इस अमानुषिक भेदभाव से खिन्न हो जाता। इला देखती कि उसकी दादी ने सोमा को आँगन की दहलीज कभी पार करने नहीं दी। इला की माँ को यह सब पसंद नहीं था, लेकिन वह कभी कह नहीं सकी, चूँकि उसकी खुद की दशा दोयम दर्जे की थी। इला की माँ का जो मूक विरोध था, वह इला में मुखरित होता है। वह तो सोमा के बेटे मनोज से स्नेह करने का दुस्साहस कर बैठती है। ये अलग बात है कि उसे सफलता नहीं मिलती, किंतु उसका विद्रोह जारी रहता है। 'अँधेरा–उजाला' कहानी बाल मनोविज्ञान को भी छूकर जाती है। लेखिका ने समीक्ष्य कहानी में अभिभावकों की उस मनोवृत्ति की ओर संकेत किया है, जब वे अपनी अतृप्त इच्छाओं को बच्चों से पूरा करना चाहते हैं–'उससे बच्चे किस मानसिक तनाव से गुजरते हैं, माँ–बाप कभी महसूस ही नहीं कर पाते। कई बार बच्चे अवसाद में चले जाते हैं। ऐसे में बच्चों के व्यक्तित्त्व का सही विकास नहीं हो पाता।' (पृष्ठ–100)

संग्रह की अंतिम कहानी 'एक नई दिशा' भारतीय मूल के परेश और मौली जैसे पात्रों के माध्यम से कही गई एक सकारात्मक कहानी है। पूर्वदीप्ति शैली लिखी इस कहानी में रीटा भास्कर और उसके पति के रूप बंटी और बबली (ठग) जैसे पात्र हैं, जिनके माध्यम से कहानी आगे बढ़ती है। परेश व मौली एक सजग दम्पति हैं, जो कठिनाइयों से जूझना जानते हैं। एक दूसरे का साथ देते हैं। जीवन में आयी किसी जटिलता या नकारात्मकता को भी एक नई और सार्थक दिशा देते हैं। यही इस कहानी का उद्देश्य भी है।

सुधा ओम ढींगरा कहानियाँ लिखती नहीं, वे उन कहानियों में स्वयं रच–बस जाती हैं। आपके पास व्यापक अनुभव हैं, इसलिए हर कहानी कथावस्तु की दृष्टि से, एक दूसरे से नितांत भिन्न होती है, लेकिन एक ऐसा तंतु इन कहानियों में छुपा रहता है, जिससे ये लेखक का परिचय स्वयं दे देतीं हैं। भावों की सशक्त अभिव्यक्ति, भाषा का सरल प्रवाह और बीच–बीच में पंजाबी भाषा का प्रयोग जैसे बघार का काम करता है और कहानियाँ एक सौंधी सी महक से भर जाती हैं। 'वसूली' हो या 'एक गलत कदम' या 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' भारतीयता और भारत से प्रेम इन कहानियों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

प्रकाशक–शिवना प्रकाशन, 7562405545

ग़ज़लें

शशि आनंद 'अलबेला'
पड़िया, बरियारपुर, मुंगेर (बिहार)
9934270111

आपके अंदर छिपी जो वेदना है
दरअसल वो सत्य की संवेदना है

आप कतराकर सदा चलते रहे हैं
यह हकीकत आप की अवहेलना है।

हम सदा मिलकर रहें गर हो मुनासिब
आपके अंदर जटिल यह चेतना है।

चाँद को सपनों में भी पूरा न देखा
बन गया वो आदमी या ढोलना है।

चाँद से आगे हमें उस पार तक भी
और भी रस्ता नया अब खोजना है।

है ऊँचाई आपकी यह मानते हैं
क्या पड़ी है आपको ही बोलना है।

हम धरा पर ही खड़े सब देखते हैं
उड़ रहे का पर नहीं अब तोलना है।

लग रहे हों गर नसीहत शब्द मेरे
मूक रह लूँगा, नहीं अब बोलना है।

है 'शशि' दिल में दबे जज्बात अब भी
गर रहे एहसास तब ही खोलना है।

हो गया नासूर अब ये मर्ज है घटता नहीं
इस समंदर में भला क्यों अब तूफाँ उठता नहीं।

है कहीं पर रास्ता औ है कहीं पर जिन्दगी
इस तरह तो इस जहाँ में आदमी पलता नहीं।

हो गए आतुर बहुत ही इन गमों के दौर से
इस शहर में अब कहीं गुलशन कोई खिलता नहीं।

रौशनी तो है फँसी खुद रौशनी की चाह में
अब मुकम्मल सा किनारा भी कहीं दिखता नहीं।

जिन्दगी ने भी छली औ लोग भी छलते रहे
जालसाजों के शहर में आसरा मिलता नहीं।

इस कदर से हम लुटे हैं रहजनों की भीड़ में
नित नया कोई तमाशा अब हमें खलता नहीं।

यह फरेबी दौर है औ मुश्किलों सा है सफर
क्यों भला कोई किसी का आजकल सुनता नहीं।

आँख मूँदें कान मूँदें चल रहे हैं राह पर
आदमी है या कोई शहर यह पता चलता नहीं।

है 'शशि' कितने सितारे आसमाँ में आज भी
दीप तो है सैकड़ों पर एक भी जलता नहीं।

समीक्षा

कथाकार जयन्त की कहानियों का अनुशीलन

कहानियों का सामाजिक परिवेश

रोशनी कुमारी
6202006419

जयन्त जी की कहानियाँ जनसाधारण की मानवीय संवेदनाओं को जगानेवाली हैं। जीवन के सामान्य और रोज़मर्रा के क्षणों में से इस तरह की मर्मस्पर्शी कहानियाँ ढूँढ लेना; कथाकार की समाज पर पैनी पकड़ का परिचायक है।[1] इनकी कहानियों की विशेषता यह है कि पहली पंक्ति से ही पाठक यह जानने को उत्सुक हो उठता है कि आगे क्या होगा। जन सामान्य के दैनिक जीवन की छोटी और बिल्कुल सामान्य–सी घटना, जिस पर हमारा ध्यान नहीं जाता, जयन्त का लेखक मन वहाँ जा पहुँचता है और ऐसी ही पृष्ठभूमि पर विकसित होती इनकी कहानियाँ अंत में किसी दूसरे तथ्य पर जाकर प्रश्नचिह्न खड़ा करती हैं और कथाकार स्वयं को अलग कर लेता है।[2]

लेखक अथवा कथाकार को अपनी कहानियों के सृजन के क्रम में निष्पक्ष रहना आवश्यक होता है। इसके अभाव में कथाकार अपनी रचनाओं के प्रति दायित्व का ईमानदारीपूर्वक निर्वहन नहीं कर पता है और उसकी कहानियाँ समाज का पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्व नहीं कर पाती हैं। जयन्त जी की कहानियाँ इस दोष से मुक्त हैं। उन्होंने समाज के वर्ग विशेष पर न लिखकर समाज के सभी तबके के लोगों पर कहानियाँ लिखी हैं। उनकी कहानियों में आदर्श तो है, परन्तु वह यथार्थ के धरातल पर खड़ा है। उसमें सिर्फ काल्पनिकता का पुट मात्र नहीं है।

आज के सामाजिक परिवेश को देखा जाए तो स्त्री विमर्श, बाल विमर्श, दलित विमर्श, सामाजिक और राजनैतिक विसंगतियाँ, गरीब–अमीर विभेद और इससे कुछ हटकर पर्यावरण चिंतन तथा विश्वबंधुत्व जैसे विषयों पर कहानियाँ लिखी जा रही हैं। बहुत–से कथाकारों ने स्वयं को कुछ एक विमर्श तक सीमित कर रखा है, परन्तु कथाकार जयन्त उन कथाकारों में से हैं, जिन्हें कोई सीमा नहीं बाँध सकी है। उन्होंने हर एक उस विषय पर कहानियाँ लिखीं हैं, जिसने उनके अंतर्मन को झकझोरा है, उनका यह दृष्टिकोण उनकी कहानियों को व्यापकता प्रदान करता है।

हमारी संस्कृति में तो पश्चिम में डूबते और पूर्व में उगते दोनों ही सूरज की पूजा की जाती है। पश्चिम का सूरज अच्छाइयों को सरल और सुंदर रूप में आत्मसात करना चाहता है।[3] ''जयन्त की कहानियाँ मानवीय सरोकार की कहानियाँ हैं।''[4] जयन्त की कहानियाँ सामाजिक धरातल के सच से उठकर सामने आती हैं और कथाकार कहानी के अन्त में समाज के सामने एक प्रश्न चिह्न छोड़कर दूर खड़ा हो जाता है। उनकी कहानी 'परिचय' की इन पंक्तियों को देखिए–''मनुष्य में कमियाँ ही तो है चित्रा ! हमें अच्छाई खोजनी चाहिए। किसी की कोई कमी उसका परिचय कदापि नहीं हो सकती।''[5] इसी कथा संग्रह की बात करें तो कहानी 'बख्शीश' में कथाकार स्वयं कथा का एक पात्र है और अंत में चायवाले के द्वारा बच्ची से छीन लिए गए सिक्के को वापस लेकर वह विदग्ध मन से दुकान से बाहर निकल आता है और फिर से उस चाय की दुकान पर चाय पीने के लिए नहीं जा पाता है। प्रथम दृष्टया यह कहानी बाल श्रम पर लिखी गई साधारण–सी कहानी लगती है, परन्तु सच पूछा जाए तो राह चलते झोपड़ीनुमा चाय की दुकान पर काम कर रहे बच्ची को कहानी की नायिका के रूप में आगे ले आना कथाकार की समाज पर गहरी पकड़ और अपने आसपास के परिवेश पर उसके गंभीर चिंतन को दर्शाता है।

उनकी कहानियाँ समाज के गरीब वर्ग, मध्यवर्ग और उच्च वर्ग सभी का प्रतिनिधित्व करती हैं। दूसरे दृष्टिकोण से भी देखा जाए तो बच्चे, बूढ़े, युवा सभी उनकी कहानियों के पात्र हैं। उनके पात्रों में वैविध्यता है। उन्होंने अपनी कई कहानियों में तो पशु–पक्षियों को पात्र के रूप में स्थान दिया है। आहट, प्रार्थना तथा अपशकुन जैसी कहानियाँ इसी श्रेणी में आती हैं। 'आत्मजा' कहानी एक आईएएस ऑफिसर और उसकी पत्नी तथा त्रासदी झेल रही एक छोटी बच्ची की कहानी है। कहानी के अंत में विजया का रोते हुए यह कहना–''मैंने इसे अपना दूध पिलाया है...। यह मेरी आत्मजा ना सही पर, अब आप इसे... अनाथालय... नहीं भेज सकते।'' एक स्त्री की ममता और करुणा का इससे सुन्दर चित्रण और क्या हो सकता है?

आग, बाइस्कोप का खेल, आत्मदाह, अंधेरी रोशनी, डायवर्सन जैसी कहानियाँ, स्वतंत्र भारतीय समाज में फैली विषमताओं को दर्शाती हैं और पाठकों का ध्यान आकर्षित करती है। पाठक को सोचने पर विवश होना पड़ता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी आज ऐसी परिस्थितियाँ क्यों है?डॉ ब्रह्मदेव कार्यी कहते हैं –''हिंदी कहानी साहित्य निरंतर गतिशील है। जीवन की जटिलताओं एवं संघर्षों के बीच समाधान पाने की ईमानदार कोशिश आज की कहानियों की खास विशेषता है। जयन्त की कहानियाँ व्यवस्था के प्रति की विद्रोह की कहानियाँ है।''[6] उनकी कहानियाँ समस्या और समाधान दोनों देती हैं और साथ ही समाज को आईना भी दिखाती हैं, क्योंकि आज का समाज आईना देखना भूल गया है।[7] एक थी मैना, ताना–बाना और टमटम के घोड़े जैसी कहानियाँ समाज में विखंडित होते मानव मूल्यों को सामने लाती हैं। 'बदलते लोग'[8] उनकी एक ऐसी ही कहानी है। यह कहानी समाज को समय के साथ मिलकर चलने का संदेश देती है। जनपथ के अंक जुलाई–सितंबर 2019 में प्रकाशित उनकी कहानी 'गरीब का खून,' के अंत में आज का समय एक बिगड़ैल धनिक परिवार को इस बात के लिए मजबूर कर देता है कि समय के साथ उसे बदलना ही होगा। वास्तविकता तो यह है कि किसी भी काल में सृजित रचनाएँ अपने तत्कालीन समाज का प्रतिनिधित्व ही कर रही होती हैं और जयन्त जी की कहानियाँ भी इसका अपवाद नहीं हैं।

कहानियों का सामायिक परिवेश

साहित्य अपने तत्कालीन समाज का दर्पण होता है। समाज में जो परिस्थितियाँ होती हैं, जो समस्याएँ होती हैं, साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से रचनाकारों द्वारा सामने लायी जाती हैं। हिन्दी के अनेक साहित्यालोचकों ने कहानी में देश–काल का स्वरूप स्पष्ट किया है। डॉ. गुलाब राय के विचार से कहानी में उपन्यास की भाँति वातावरण के चित्रण के लिए अधिक गुजांइश नहीं होती, फिर भी कहानी में देश–काल की स्पष्टता लाने के लिए तथा कार्य से परिस्थिति की अनुकूलता व्यंजित करने के अर्थ में इसका चित्रण आवश्यक हो जाता है।[9] वर्तमान समय और समाज में क्षरित हो रहे मूल्यों पर प्रश्नचिह्न उठाती उनकी कहानी –'स्वर्गारोहण पर्व' पाठक को अंदर तक झकझोर देती है। वर्तमान समाज चाटुकारिता की दलदल में इस कदर जा फँसा है कि मानवीय मूल्य दरकिनार कर दिए गए हैं। उनकी यह कहानी दैनिक जागरण के पुनर्नवा पृष्ठ पर मई 2015 में प्रकाशित हुई थी। अपने पूरे जीवन में सरलतापूर्वक मानवता के साथ ईश्वर की आराधना करनेवाले एक साधारण बढ़ई के शरीर की दुर्दशा मृत्यु के पश्चात् भी किस तरह हो सकती है, इस कहानी को पढ़कर समझा जा सकता है। उनकी कहानियाँ समाज से गहरा सरोकार रखती हैं तभी तो श्री भगवती प्रसाद द्विवेदी कहते हैं –''कथाकार जयन्त की कहानियों में समाज का तीखा सच व्यंग्यात्मक ढंग से उभरकर सामने आता है। समाज की विसंगतियाँ और विद्रुपताएँ इन कहानियों के माध्यम से व्यक्त हुई हैं, जो पाठकों को बहुत कुछ सोचने पर विवश करती हैं।'' श्री रामजतन यादव जी ने जयन्त की कहानियों पर प्रकाश डालते हुए कहा है

–''इनकी कहानियाँ हमारे समाज के ज्वलंत मुद्दों एवं स्थितियों को गहरे तक उकेरती हैं तथा समाज की तमाम विसंगतियों के बावजूद जीवन के प्रति आस्था और विश्वास जगाती हैं।''

डॉ पी.सी. विश्वकर्मा कहते हैं कि कहानी अपने सामाजिक परिवेश में नए मूल्यों को स्थापित करती है। चर्चित कथाकार श्रीमती ममता मेहरोत्रा का कहना है, जिनकी लेखनी में दम होता है, उन्हें सामयिक परिवेश में स्थान बनाने में सफलता मिलती है। यह सही है कि रचनाकार अपने आसपास घटित हो रही घटनाओं से विमुख होकर नहीं रह सकता। उसके रचना कर्म पर इन घट रही घटनाओं का प्रभाव निश्चय ही पड़ता है, परंतु गौर करने वाली बात यह भी है कि आनेवाले कल और गुजर रहे वर्तमान में सामंजस्य स्थापित कर लिखी गईं कहानियाँ ही कालजयी रचना बन पाती है। स्वाभाविक रूप से कथाकार भी अपने समय से प्रभावित नजर आता है। जयन्त की कहानियाँ इस कसौटी पर खरी उतरती हैं और इसी कारण उनकी कई एक कहानियों को कालजयी रचनाओं की श्रेणी में रखा जा सकता है। कुछ कहानियों की बात छोड़ दी जाए तो उनकी कहानियों में सामाजिक और सामयिक दोनों ही तत्त्व मौजूद हैं। अजनबी, कवि, एक्सप्रेस गाड़ियाँ, जैसी कुछ कहानियों में कथाकार अपने समय से दूर जाता हुआ नज़र आता है। उनकी एक और प्रसिद्ध कहानी '2220 का एक दिन' अक्षरा मार्च–अप्रैल 2013 में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी अपने समय से आगे चलती दिखाई पड़ती है। इस कहानी में आनेवाले कल में पर्यावरण और पृथ्वी पर कम हो रहे प्राकृतिक भंडारों तथा उनके दुरुपयोग पर प्रश्नचिह्न खड़े किए गए हैं। 'चारदिवारियाँ'[10] एक ऐसी ही कहानी है, जो वर्तमान भूत और भविष्य तीनों समय का प्रतिनिधित्व करती हैं। ऑस्कर वाइल्ड की कहानी द सेल्फिश जाइंट की पृष्ठभूमि पर लिखी गई यह कहानी वर्तमान में टूटते परिवार और आनेवाले कल में सामाजिक और भावनात्मक विखंडन की समस्या को उठाती है।

टमटम के घोड़े[11] और अंधेरी रोशनी[12] जैसी कहानियों में कथाकार ने नौकरशाही, लालफीताशाही और भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं को सटीक ढंग से उकेरा है। ऐसा प्रतीत होता है कि कथाकार समय के दौर में जिन समस्याओं से होकर गुजरा या फिर कथाकार की दृष्टि जिन समस्याओं पर पड़ी, उसपर उसकी एक नई कहानी का जन्म हुआ। सिद्धेश्वर ने उनके विषय में कहा है –''जयन्त की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे एक सामान्य–सी घटना को एक सुन्दर कहानी का रूप दे डालने में सिद्धहस्त हैं।'' डायवर्सन[13] कहानी रिश्वतखोरी और पराजित होते सत्य पर कुठाराघात करती है।

प्रसाद के दोने[14] और बदला[15] जैसी कहानियों में कथाकार ने आज भी हमारे समाज में फैली हुई कुरीतियों और विसंगतियों को सामने लाने का सफल प्रयास किया है। उनकी विवादित कहानी जाल[16] में एक ऐसी स्त्री का चरित्र चित्रण है, जो अपने पति के जीवित रहते, पति के मित्रों के बीच एक आदर्श पत्नी है, परंतु पति के मृत्यु के पश्चात् वह एक वस्तु मात्र हो जाती है। सभी उसे ललचाई नजरों से देखते हैं और अंततः अधिकारी महोदय के द्वारा झांसा देकर उससे जबरन संबंध बना लिया जाता है। हद तो तब हो जाती है, जब अधिकारी की पत्नी भी अपने पति का ही साथ देती है और नायिका को अपने पति की भोग्या बने रहने की सलाह दे डालती है। निश्चय ही इस कहानी को लिखने के क्रम में कथाकार को कहानी में कुछ आवरण विहीन संवादों और वाक्यों का समावेश करना पड़ा है, परंतु कहानी के सामयिक तत्त्व को देखते हुए यह सर्वथा उपयुक्त जान पड़ता है। ऐसी ही एक और कहानी 'एक थी मैना'[17] में आज के समाज मैं फैल रही यौन कुंठाओं का चित्रण है। 'ताना–बाना'[18] कहानी वर्तमान समय में बच्चों से जुड़ी समस्या और उनकी सुरक्षा के साथ–साथ समाज में फैली विषाक्त परिस्थितियों की भी विवेचना करती है। कहानी का नायक स्वयं एक बालक है और वयस्क के द्वारा किस प्रकार उसे फँसाया जाता है, इसका चित्रण इस कहानी में बड़े ही सुन्दर ढंग से हुआ है।

पंचतंत्र की कहानियों को आधार बनाकर दौड़, (दैनिक जागरण 20 जून 2011) बाघ और राहगीर, (दैनिक भास्कर 16 फरवरी 2015) कबूतर और जाल, (दैनिक भास्कर 23 फरवरी 2015) कुपात्र को उपदेश, (दैनिक भास्कर 23 मार्च 2015) कौवा और लोमड़ी, (23 मार्च दैनिक भास्कर 2015) बगुला भगत, (दैनिक भास्कर 27 अप्रैल 2015) कील उखाड़नेवाला बंदर तथा बंदर और पक्षियों की कथा, (हरित वसुंधरा, अप्रैल–जून 2019) जैसी लिखी गई कहानियाँ, कथाकार के एक अभिनव प्रयोग का परिचायक है। पंचतंत्र की इन कहानियों में थोड़े बदलाव के साथ आज के समय की प्रासंगिकता का समावेश किया गया है। इन कहानियों में आज के समय और मौजूद विद्रूपताओं तथा विडंबनाओं पर गहरा व्यंग्य है।

निश्चय ही कथाकार समय के साथ चलने में सफल रहा है। बल्कि यह कहना ज्यादा उपयुक्त होगा कि उनकी कहानियों में समय साथ–साथ चल रहा होता है। उनका सामयिक चिंतन अत्यंत ही मुखर है और यह चिंतन उनकी कहानियों में भी उभरकर सामने आता है।

कहानियों का सांस्कृतिक परिवेश

रचनाधर्मिता और लेखन को प्रभावित करनेवाले तत्त्वों में समाज और समय के साथ–साथ सांस्कृतिक परिवेश का भी बड़ा ही महत्त्व है। एक कथाकार के दो सांस्कृतिक परिवेश हो सकते हैं। एक वह परिवेश है, जिसमें वह पला–बढ़ा है तथा दूसरा उसके स्वयं के चिंतन और दार्शनिक तत्त्वों से निर्मित सांस्कृतिक परिवेश। इन दोनों ही परिवेशों के सामंजस्य से ही कथाकार एक उत्तम कहानी दे सकता है। दोनों परिवेश में सामंजस्य के अभाव में सृजित कहानी न तो प्रभावोत्पादक होती है और न ही वह कोई संदेश दे पाती है। इन दोनों में तालमेल बिठाना कथाकार के ऊपर ही निर्भर करता है। उन्होंने अपनी कहानियों में यह तालमेल बड़ी ही सूझबूझ के साथ बिठाया है। यही कारण है कि आज की लिखी जा रही कहानियों के बीच उनकी भी कई कहानियाँ हिन्दी साहित्य में मील के पत्थर के रूप में स्थापित हो चुकी हैं।

कथाकार अपनी कहानियों में भारतीय संस्कृति के प्रति अत्यंत ही सजग है। यह भी ध्यान देने की बात है कि वे अपनी संस्कृति के साथ–साथ पाश्चात्य संस्कृति की अच्छाइयों का सम्मान करने से भी नहीं चूकते हैं तो उसमें निहित रूढ़िवाद तत्त्वों के विरोध में भी बढ़–चढ़कर सामने आते हैं। अपने कहानी संग्रह ''पश्चिम का सूरज'' में वे कहते हैं –''प्रत्येक सभ्यता और संस्कृति में कुछ अच्छी और कुछ बुरी परंपराएँ सदैव से मौजूद रही है। समय के साथ इनमें कुछ पीछे छूट जाती हैं और कुछ जुड़ जाती है।" पुस्तक के शीर्षक का नाम लेकर इस संग्रह की कहानियों के विषय में वे यह कहना चाहते हैं कि पश्चिम की संस्कृति के अच्छे तत्त्वों को आत्मसात किए जाने की आवश्यकता है, परन्तु अनावश्यक और अवांछित प्रवृत्तियों से दूर रहना ही श्रेयस्कर है। वे पुनः कहते हैं –''अपनी गौरवशाली सभ्यता और संस्कृति का ढोल बजा, 'जगतगुरु' की उपाधि गिरवी में रख, क्या हमने स्वयं को सांस्कृतिक तौर पर 'जगत दास' बनाने का ही संकल्प कर लिया है?''

राग देश में संकलित उनकी कहानी नीलांजना सामान्य पाठक के लिए एक आदर्श प्रेम–कथा मात्र ही है। परन्तु जरा इस संवाद को देखिए ''हाँ आपने जिससे विवाह किया, उसके परिवार, उसकी बहनों और समाज के लिए मेरा त्याग किया। आप चाहते तो मुझे एक्सपोलाइट (बर्बाद) कर सकते थे, मुझे धोखा दे सकते थे। मेरे परिवार की ओर से और मैंने भी आपको छूट दे रखी थी। सब तो आपके सामने था, परंतु आपने मेरे शरीर को टच (स्पर्श) नहीं किया, कभी मेरे शरीर से खिलवाड़ नहीं किया–यह क्या कम बड़े त्याग है?एक पुरुष

का यह त्याग कम नहीं !'' कथा उत्तम पुरुष लिखी गई है। नायक नीलांजना के त्याग की भी सराहना करता है और फिर अंत में दोनों इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस तरह का भावनात्मक त्याग हमारे देश में ही संभव है। कहानी का अंत रेडियो में बज रहे गीत–'ऐसा देश है मेरा... धरती सुनहरी अंबर नीला...।' से होता है। यहाँ कथाकार अपने देश की महान सांस्कृतिक विरासत की महानता स्थापित करता है।

इसी प्रकार रिश्ता कहानी में अभिषेक का सौन्दर्या के प्रति किया गया त्याग, भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना ही है। इस कहानी में कथाकार ने अभिनव प्रयोग करते हुए एक लंबी कहानी को तीन कहानियों में विभक्त कर के लिखा है। इस कहानी की कड़ी में दूसरी कहानी है 'दूसरा रिश्ता' और तीसरी कहानी 'दीमक' है। तीसरी कहानी के अंत में सौंदर्या यह स्वीकार कर लेती है कि वह सब कुछ झेलकर भी जिंदा रहने को विवश है, क्योंकि वह माँ है और उसकी एक पुत्री है। वह कहती है –''हमारी सभ्यता और संस्कृति में विदेशी सभ्यता और संस्कृति या फिर धन का घुन अथवा दीमक लग गया है।'' रिश्ता में नायक और नायिका के अतिरिक्त अन्य पात्र हैं, परन्तु दूसरा रिश्ता और दीमक में केवल नायक और नायिका के माध्यम से कहानी आगे बढ़ती है। इस कहानी में सौन्दर्या और अभिषेक दोनों में अपनी क्षरित होती संस्कृति के प्रति बेचैनी स्पष्ट है।

इन तीन कहानियों के अलावा प्रश्न चिह्न, आत्महत्या, तीन दृश्य ऐसी कहानियों में भी हमारे बिखरते सांस्कृतिक मूल्यों और विलुप्त होते सामाजिक मूल्यों की चर्चा हुई है। इन कहानियों में कथाकार यह भी स्पष्ट करने में सफल रहा है कि भारतीय संस्कृति में पाश्चात्य संस्कृति का संक्रमण हो रहा है और इसके कारण हमारे सामाजिक–संस्कृति मूल्यों में गिरावट आई है। हमारी युवा पीढ़ी में भटकाव, बेचैनी, अवसादग्रस्तता इत्यादि की प्रवृत्ति बढ़ रही है। हमारे समाज का एक बड़ा वर्ग शार्ट–कट के रास्ते सारी भौतिकता को प्राप्त कर लेने के लिए प्रयासरत है। आज समाज में धैर्य का अभाव है। रातों–रात सबकुछ हासिल कर लेने की होड़–सी चल पड़ी है। इंटरनेट के माध्यम से दिखाओ, बेचो और ज़ेब से पैसे निकाल लो का धंधा ज़ोरों पर है। आज अमंज कतपदा दक इम तिममश का सिद्धान्त ही हमारे जीवन का दर्शन बनता जा रहा है अथवा इसे ही जीवन का सच बनाने का षडयंत्र रचा गया है। वास्तविकता तो यह है कि जीवनयापन की परिस्थितियाँ और जीवन शैली पर पाश्चात्य संस्कृति का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा है कि संभवत: आज हम अपनी संस्कृति के उस मोड़ पर खड़े हैं जहाँ विवशता के अलावा कुछ भी नहीं है। 'एक थी मैना' कहानी में इंटरनेट के जरिए फैलते जहर और होते सांस्कृतिक चीरहरण की पीड़ा अत्यंत मार्मिक है। उनकी कहानी 'कॉपर ब्राउन'(वर्तमान में अप्रकाशित, नवम्बर 2019) भी हमारे सामाज की विषमताओं की व्याख्या करती है। कहानी की नायिका, कॉपर ब्राउन एक बाल भिखारिन है और पेट की भूख मिटाने के लिए उसे जीवन जिस मोड़ पर इस बाल–अवस्था में ही आना पड़ता है, वह अत्यंत दुखद है। कहानी के अंत में कथाकार फिर से कुछ नहीं कहता; वह पाठकों के समक्ष सिर्फ परिस्थिति को रखकर हट जाता है, उसकी ट्रेन खुल जाती है। पाठक ठगा–सा यह सोचता रह जाता है कि आखिर कॉपर ब्राउन को अपनी और अपने परिवार की भूख मिटाने के लिए क्या करना पड़ा होगा?कथाकार गंगा–जमुनी तहज़ीब और स्वस्थ परम्पराओं का भी पक्षधर है। वागर्थ, जून– 2012 में प्रकाशित 'इबादत' कहानी उनकी कालजयी रचना है। इस कहानी में एक मौलवी, एक वृद्ध हिन्दू को मन्दिर में ले जाकर खड़ा करता है, ताकि वह और उसका परिवार पूजा–पाठ कर सके। उसके मज़हब के लोग उसका मज़ाक उड़ाते हैं और उस पर व्यंग्य कसते हैं तो वह कहता है कि खुदा से उसकी बात हो चुकी है। इस पर वे यह जानना चाहते हैं कि क्या बात हुई है?वह कहता है–''इंसानियत की इबादत खुदा की इबादत से अलग नहीं है।'' कहानी का अंत कुछ इतना सुंदर बन पड़ा है कि वह पाठक को हृदय की गहराई से सोचने के लिए विवश करता है और यह संदेश भी देता है आज भी हमारी सांस्कृतिक विरासत की जड़ों को कोई तबतक नहीं हिला सकता, जबतक हम स्वयं ना हिले।

कहानियों की प्रासंगिकता

कहानियों की प्रासंगिकता से तात्पर्य है कि लिखी गई कहानी अपने समय और तत्कालीन समाज के लिए कितनी प्रासंगिक अथवा सार्थक रही है?साथ ही ऐसी कहानी समय के साथ कदम से कदम मिलाकर चलती हुई वर्तमान और आनेवाले भविष्य में भी अपनी सार्थकता सिद्ध करती हो तो उसे एक उत्कृष्ट कहानी माना जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि कोई कहानी सभी को आकर्षित करे। क्योंकि पाठकों की अपनी–अपनी अलग मानसिकता व सोच हुआ करती है। निश्चय ही परिस्थितियों में बदलाव होने पर सोच भी बदल जाती है। यही कारण है कि वर्तमान में अच्छी न लगनेवाली रचना भी भविष्य में पाठकों को प्रिय लग सकती है। पहले भी कई कथाकारों की कहानियों को अपने समय में प्रसिद्धि नहीं मिली, परन्तु कालांतर भविष्य में उसकी प्रासंगिकता के प्रतिपादित होने का संकेत मिलता है। इस तरह की कहानियाँ कथाकार के द्वारा अपने चिंतन और कल्पना के आधार पर लिखी जाती हैं। कथावस्तु पर कथाकार की पकड़ आनेवाले कल में कहानी विशेष को प्रासंगिक बना देती है।

भविष्य में संभावित घटनाओं की कल्पना कर लिखी गई कहानियों में वैज्ञानिकता के तत्त्व छिपे रहते हैं। शिमला से प्रकाशित होनेवाली पत्रिका 'सेतु' दिसंबर 2009 के अंक में प्रकाशित 'मीटिंग', भोपाल से प्रकाशित अक्षरा के सितंबर–अक्टूबर 2011 में प्रकाशित 'चारदीवारियाँ' और अक्षरा में ही अप्रैल–जून 2013 में प्रकशित '2230 का एक दिन' जैसी जयन्त की कहानियाँ इसी श्रेणी में आती हैं। मिटिंग कहानी यह कहती है कि आनेवाले भविष्य में वनस्पतियों और पर्यावरण का विनाश हो जाएगा और प्राणियों का अस्तित्व भी नहीं रहेगा। चार दीवारियाँ कहानी भूतकाल से शुरू होकर वर्तमान समय में बिखरते समाज, भूमि के होते टुकड़े और फैलते हुए वैमनस्य जैसी समस्याओं को सामने लाती है। पाठक के मन में यह प्रश्न उठता है क्या आनेवाले भविष्य में कुछ भी नहीं बचेगा?कहानी उसे अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर कुछ सोचने पर विवश करती है तथा यह भी संकेत करती है कि समय रहते प्रशासन और हमारी सरकारों को भी देश, समाज और विश्व हित में सोचने की आवश्यकता है।

उनकी कुछ कहानियों में प्रासंगिकता के तत्त्व तो हैं, परंतु ये कहानियाँ घटना मात्र जैसी ही लगती हैं और इन कहानियों में कथाकार क्या दिखाना चाहता है, यह पाठक की समझ से परे हो जाता है। यथा 'अजनबी' और परिचय कहानी संग्रह में 'एक कहानी और' कहानी में भूत–प्रेत की चर्चा हुई है। निश्चय ही भूत–प्रेत जैसी वस्तु को इस युग में वैज्ञानिक रूप से मान्यता नहीं है। आज के इस समय में इस तरह के भ्रम को स्वीकार करके भूत–प्रेत के अस्तित्व को दर्शाना प्रासंगिक नहीं जान पड़ता है। यदि ऐसे किसी पाखंड को खंडित करने के लिए कोई कहानी लिखी जाती तो वह ज्यादा प्रासंगिक होती। यहाँ यह मानना गलत नहीं होगा की इन कहानियों का उद्देश्य पाठक का मनोरंजन मात्र ही है।

पश्चिम के प्रभाव से हिन्दी साहित्य में मनोवैज्ञानिक कहानियों का प्रचलन हुआ है। जयन्त जी ने भी कुछ सुन्दर मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखी हैं। उनकी इन कहानियों में बच्चों और स्त्रियों के मनोविज्ञान पर उनकी अच्छी पकड़ दृष्टिगोचर होती है। उनकी कहानी 'कवि' की तुलना जैनेंद्र की कहानी 'खेल' से की जा सकती है। हंस में प्रकाशित कहानी 'बदला' भी बाल मनोविज्ञान को ही लेकर लिखी गई कहानी पूरी तरह सफल है।

दोनों ही एक मनोवैज्ञानिक कहानियाँ हैं, जिसमें बाल मन की भावनाओं को बड़ी ही सुंदरता से उकेरा गया है। दैनिक आज मैं 2003 में छपी कहानी 'कब्र का भूत' में भी कथाकार ने बाल–सुलभ मनोवृत्ति का चित्रण किया है। 'प्रसाद के दोने' कहानी में भी बाल मनोवृत्ति ही दिखाई गई हैं, परंतु यह कहानी समाज में प्रचलित बालश्रम की समस्या को भी उजागर करती है। बालश्रम पर कानून अवश्य बना दिए गए हैं, परंतु आज भी देखा जाए तो छोटे–छोटे होटलों, घरों अथवा अन्य स्थानों पर बच्चे काम करते हुए या फिर कुछ न कुछ बेचते हुए दिखाई पड़ ही जाते हैं। बालश्रम की समस्या आज भी मौजूद है। यही नहीं इन बाल श्रमिकों का शोषण भी हो रहा है। विकास के इस दौर में भी कानून बनने और सख्ती हो जाने के बावजूद यह समस्या है; यह कहानी इसी ओर इंगित करती है।

उनकी पहली कथा संग्रह परिचय में छपी एक कहानी 'तिकड़म' में कथाकार कहानी के अंत में भाग खड़ा होता है। डॉ सच्चिदानंद सिंह 'साथी' के अनुसार यह कथाकार की सच से मुँह मोड़ लेने, चुप रहने या फिर पलायनवादिता जैसी प्रवृत्ति को दर्शाता है।

इंद्रप्रस्थ भारती, जनवरी–मार्च 2010 में प्रकाशित उनकी कहानी 'समाजवाद हॉल्ट' पर काफी विवाद रहा है। कुछ विद्वानों का यह मानना है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने दिनों बाद भी समाजवाद जैसे विषयों पर लिखे जाने का औचित्य नहीं रह गया है। वहीं दूसरे लोग यह मानते हैं कि यह कहानी अभी भी प्रासंगिक बनी हुई है। सत्तर से अधिक वर्षों की स्वतंत्रता के बाद भी आज देश में जिस समाजवाद की कल्पना की गई थी, उसकी गाड़ी समाजवाद हॉल्ट पर आकर रुकी हुई है। कहानी में आए पात्रों में से ज्यादातर मजदूर हैं। उन्हें यह भी पता नहीं है कि उन्हें किस प्रदर्शन के लिए ले जाया गया था और उसका उद्देश्य क्या था?यह बात भी स्पष्ट होती है कि राजनीतिक दलों द्वारा अपने लिए भीड़ जुटाने के लिए किस प्रकार पैसे और अन्य प्रलोभन दिए जाते हैं। कहानी इस तथ्य की भी व्याख्या करती है कि आज भी हमारे समाज में ऐसे गरीब हैं, जिनके पास एक शाम खाने के लिए भी भरपेट अनाज नहीं है, तो दूसरी सुबह के लिए पैसे भी नहीं है।

'रेस्टोरेंट जलपान' और 'टमटम के घोड़े' कहानी में नौकरशाही एवं उच्चाधिकारियों द्वारा कर्मचारियों पर किए जा रहे जुल्म तथा उनकी कार्यशैली पर भी प्रश्न उठाए गए हैं। 'प्रश्न चिह्न' और 'जाल' में बाँटी जा रही राहत सामग्री और गरीबों की मदद के नाम पर की जा रही किसी भी वसूली अथवा स्त्री का शारीरिक शोषण आज भी प्रासंगिक है। 'अंधेरी रोशनी और 'डायवर्सन' कहानी में रिश्वतखोरी को दर्शाया गया है। 'दोआबा' मार्च, 2019 में प्रकाशित कहानी 'नजरबंद', 'एक था चिड़ा', तथा 'कलियुग' आ गया है, जैसी कहानियों में कथाकार ने वृद्धों की समस्या और समाज में उनकी स्थिति का विवेचन किया है।

कहानियों की विषय वस्तु की प्रासंगिकता के साथ–साथ उनकी भाषा शैली और पाठकों तक उनकी पहुँच पर भी एक नज़र डालना आवश्यक है। डॉक्टर सियाराम तिवारी कहते हैं– ''आधुनिक हिंदी कहानियों में कथा तत्त्व विरल और कहानीकार का चिंतन ही मुखर रहता है। जयन्त जी की कहानियाँ इस दोष से मुक्त हैं। कहानी का प्राण तत्त्व कुतूहल है उनकी कहानियाँ इस निकष पर भी खरी उतरती हैं।' कहानियों के मूल तत्त्वों में मौलिकता, रोचकता, क्रमबद्धता, विश्वसनीयता और उत्सुकता है। उनकी कहानियों में इन सभी तत्त्वों का समावेश है। यत्र–तत्र नाम मात्र को आंचलिकता भी दिखाई पड़ती है। उनकी कहानियाँ इतनी भी छोटी नहीं हैं कि उन्हें लघु कथा की संज्ञा दी जाए। उन्होंने लघु कथाएँ भी लिखीं हैं। पंचतंत्र की कहानियों पर आधारित उनकी कहानियाँ वस्तुतः लघु कथाएँ हैं। हंस में प्रकाशित उनकी कहानी 'बदला' पर विद्वानों ने कहानी के सिकुड़ते धरातल पर आलोचना की थी। प्राय उनकी कहानियाँ लंबी नहीं हुआ करतीं और पाठक सरलतापूर्वक दस से पन्द्रह मिनट के अंदर कहानी पढ़ लेता है। उनकी कहानियों के लिए यह कहना सटीक होगा कि देखन में छोटन लगे, घाव करे गंभीर। कहानियों में कथावस्तु महत्त्वपूर्ण होती है। डॉ. प्रतापनारायण टंडनजी का कहना है कि ''कहानी की आकारगत सीमाओं के कारण उसकी कथावस्तु में अनेकसूत्री घटनाओं के संग्रथन को औचित्यपूर्ण नहीं माना जाता।''[20] वैसे उन्होंने कुछ लंबी कहानियाँ भी लिखी हैं जैसे मंडी, नीलांजना इत्यादि। परन्तु वे अपनी कहानी 'पिता के नाम' को उपन्यासिका मानते हैं। उनकी भाषा सरल है और यही कारण है कि उनकी कहानियाँ सामान्य पाठक वर्ग पर भी जबरदस्त पकड़ बनाती हैं। उनकी कहानियों के संवादों में जीवंतता है। कहानियों के संवाद अर्थात् कथोपकथन सामान्य बोलचाल का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन संवादों ने उनके चरित्रों को और भी निखारा है। शैली और शिल्पगत विशेषता मोहक और सुंदर है। मुहावरों से उन्होंने अपनी कहानियों की भाषा को आभूषण–सा पहना रखा है। इसके कारण पाठक कहानी को पढ़ते हुए एक अदृश्य आकर्षण से बँध–सा जाता है। जिज्ञासा संसार, सितम्बर 2018 में प्रकाशित उनकी कहानी 'वह शाम' आदर्श प्रेम पर लिखी गई कहानी है। उनकी कहानियों में अब भी प्रेषित हो रहा प्रेम यह दर्शाता है कि लेखक का मन चिरयुवा होता है। उनकी कहानियाँ युवाओं को गुदगुदाती हैं तो प्रबुद्ध पाठकों के लिए सोच देती हैं। सभी लोगों और विशेषकर सामान्य लोगों पर लिखी गई कहानियों के कारण उनकी कहानियों की प्रासंगिकता स्वयंसिद्ध हो जाती है।

पाठकों के लिए यह प्रसन्नता का विषय यह है कि जयन्त जी आज भी कहानियाँ लिख रहे हैं। हमें यह आशा रखनी चाहिए कि वे कथा साहित्य को और भी समृद्ध करेंगे। हिंदी साहित्य के लिए जयन्त की कहानियाँ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि उनकी कहानियों पर अभी बहुत कुछ शोध किया जाना तथा कहानियों की बारीकी पर चर्चा करना अभी भी शेष है।

1. पृष्ठ 5 परिचय.
2. पृष्ठ 9 पश्चिम का सूरज.
3. पृष्ठ 11 पश्चिम का सूरज.
4 डॉ. सच्चिदानंद सिंह साथी.
5 पृष्ठ 28 पाचिय.
6. पृष्ठ 8 पश्चिम का सूरज.
7. पृष्ठ 10, मुकेश परमार, पश्चिम का सूरज.
8. प्रेरणा जनवरी–मार्च 20–17.
9. हिन्दी कहानी कला, अध्याय 11
10. प्रेरणा जनवरी–मार्च 2017
11. अक्षरा सितंबर–अक्तूबर 2011
12. इंद्रप्रस्थ भारती नवम्बर 2008
13. परिकथा 2008.
14. संडे पोस्ट नवंबर 2009,
15. हरियाणा संवाद जून 2005.
16. हंस नवंबर 2011.
17. वैशाली, सितंबर 2012
18. जनपथ सितम्बर 2014.
19. नूतन कहानियाँ मई–जुलाई 2019.
20. हिन्दी कहानी कला, अध्याय 6

लेखक–जयन्त कुमार 'जयन्त' 9430060336

समीक्षा

सांस्कृतिक विरासत को बचाती हुई कहानियाँ

प्रो० मकेश्वर रजक
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
मानकर कॉलेज, बर्द्धवान (प०बं०)
मोबाइल 9332653595

'कथा–लघुकथा' कथाकार रविशंकर सिंह का प्रथम कहानी–संग्रह है। इस संग्रह की सभी कथाएँ और लघुकथाएँ राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं।

इस संग्रह में कुल आठ कथाएँ और तैंतालिस लघु–कथाएँ संकलित है। संग्रह की प्रथम कहानी– 'अखाड़ा' दो सभ्यता–संस्कृतियों के बीच के द्वन्द्वका प्रतीक है। एक पूंजीवादी कम्पनी गजराज सिंह के बावन बीघा की पुश्तैनी जमीन पर कारखाना बनाना चाहता है, जिसे गजराज सिंह के पुरखों ने मेला–समिति को दान कर दिया था। यह महज जमीन का एक टुकड़ा ही नहीं है, बल्कि उस गाँव का सांस्कृतिक–विरासत भी है। "गाँव के बाहर बावन बीघा जमीन में बना पोखर, शिवमंदिर और अखाड़ा उन्हीं के पुरखों की निशानी है। वहाँ हर बरस रामनवमी के अवसर पर बड़ा मेला लगता है। अखाड़े में कुश्ती–प्रतियोगिता होती है। विजेता पहलवानों को मेला–समिति की ओर से इनाम–इकराम दिया जाता है" (पृष्ठ–14)। उस जमीन पर बना विशाल पोखर उस गाँव के किसानों की खेती के लिए एक मात्र सिंचाई का साधन है। स्थानीय विधायक गजराज सिंह को अति आधुनिकीकरण का झाँसा देकर उस जमीन को कम्पनी के हाथों सौंपना चाहता है। गजराज सिंह का मित्र उन्हें उस जमीन के आधुनिकीकरण की हकीकत बताता है कि बंजर भूमि के बजाए तीन फसला भूमि पर शहर बसाए जाने में कैसी बुद्धिमानी है। वहाँ पूंजीवादी लोभ–लाभ के लिए कुसंस्कृति टाँग पसारेंगी। प्रेमचंद के 'रंगभूमि' में महेन्द्र प्रताप के सहयोग से जॉन सेवक सूरदास के जमीन पर कारखाना बना लेता है। उसी प्रकार फकीर मोहन सेनापति (उड़िया उपन्यासकार) के 'छ माण आठ गुंठ' (छः बीघा जमीन) उपन्यास में अत्याचारी रामचन्द्र मंगराज से भगिया अपने जमीन को बचा नहीं पाता है। परंतु गजराज सिंह समय रहते सचेत होकर अपनी जमीन को कम्पनी के हाथों जाने से बचाने के लिए संघर्ष का संकल्प लेता है। एक गोष्टी में 'अखाड़ा' कहानी पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कथाकार शिवमूर्ति ने कहा था–"कथाकार ने 'अखाड़ा' कहानी में बाजारवाद के लुभावने झाँसी में फँसते हुए लोगों की नियति और उससे उबरने के संकल्प को दिखाया है, तो भविष्य के खतरे के प्रति भी आगाह किया है। इस कहानी में यह भी संकेत किया गया है कि सरकार की गलत नीतियों के कारण किसान आत्महत्या के शिकार हो रहे हैं। यथा "...और अब खेती में रखा क्या है ठाकुर साहब?खाद–पानी, बीज–मजूरी की कुल लागत भी उपज से नहीं निकलती है। किसान दोगुने दाम में बीज खरीदते हैं और अपनी फसल आधे दाम में बेचते हैं। वे बैंक का लोन भी नहीं चुका पाते। तभी तो किसान आत्महत्या कर रहे हैं" (पृष्ठ–17)।

संग्रह की दूसरी कहानी है– 'ओल्ड एज होम' जो वृद्धा–जीवन की समस्याओं पर केन्द्रित है। हमारे पुरखों के आदर्श, मूल्य और कर्तव्य–निष्ठता आज की युवा–पीढ़ी को आउटडेटेड लगती है। वे वैश्वि–बाजारवाद की संस्कृति के शिकार हैं। इस कुसंस्कृति के बहाव में आकर हम अपने वृद्ध माता–पिता को अपने से दूर रखना चाहते हैं, "लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि उन्हीं की निगरानी में हमने बेहतर जीवन पाया है" (पृष्ठ–34)। जिस पिता ने अपने बेटों की जिंदगी, पढ़ाई–लिखाई एवं उनकी नौकरी के लिए जगह–जमीन तक बेच डाली, रिटायर्ड होने के पश्चात् वे ही ओल्ड एज होम में रहने के लिए अभिशप्त है। तथापि उसके मन में अपने बेटों, बहुओं एवं पोते–पोतियों के प्रति स्नेह ही उमड़ता है। रविशंकर सिंह समय की समीक्षा करते हुए कहते हैं– "एक समय वह था और एक समय आज है" (पृष्ठ–38)। क्या आज हमारी संस्कृति संकट में नहीं है–इस प्रश्न का उत्तर शायद हमारी युवा पीढ़ी के पास नहीं है।

'दंगा' कहानी साम्प्रदायिक हिंसा को केंद्र में रख कर लिखी गयी है। भारतवर्ष की संस्कृति साम्प्रदायिक हिंसा में विश्वास नहीं करती, तथापि इस देश का हर कोना किसी न किसी रूप में इस कुसंस्कृति का शिकार होता रहा है। बिहार का भागलपुर, उत्तर प्रदेश का कानपुर, गुजरात का गोदरा, पश्चिम बंगाल का आसनसोल आदि इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। अंग्रेजों द्वारा फैलायी गयी इस विषबेल को आज के भ्रष्ट और स्वार्थी राजनेता आम जनता को गुमराह करने एवं राजनीतिक लाभ लेने के लिए बखूबी कर रहे हैं। इस कहानी में जोगी साव का उपयोग शिवनाथ बाबू और स्थानीय विधायक द्वारा इसी रूप में होता है। स्थानीय विधायक एक तरफ हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच दंगा फैलाता है, तो दूसरी तरफ अन्य पार्टी पर दंगा भड़काने का आरोप लगाकर आम जनता को अपनी शरण में आने का आह्वान करता है, जो वोट की राजनीति के सिवा और कुछ भी नहीं है। लेखक देश की अपनी संस्कृति का परिचय देते हुए कहते हैं–"मुसलमान रामनवमी के अखाड़े में कुश्ती खेलने जाते और हिन्दू ताजिये के जुलूस में शामिल होते ताजिया हिन्दुओं के द्वार पर लगाया जाता था। हिन्दू युवक भी माथों पर पगड़ी, कमर और पैरों में घुँघरू बाँधकर पाइक दौड़ाते थे। मुसलमान युवकों को लाठी, भला, बल्लम, बाणा, तलवार और बर्छी चलाने के गूढ़ सिखाने के लिए हिन्दू टोले से उस्ताद बुलाए जाते थे" (पृष्ठ–44)। लेकिन देश की वर्तमान राजनीति ने हमारी इस सुसंस्कृति पर प्रश्न–चिह्न लगा दिया है। तभी तो लेखक कहते हैं– "अब हिन्दू ताजिये के जुलूस में नहीं आते और मुसलमान रामनवमी के अखाड़े में नहीं जाते। यह कैसा समय है?" (पृष्ठ–44)। इस प्रकार के दंगों में क्षति तो आम जनता की ही होती है, जो मिट्टी के घरौंदों में दरवाजों की जगह टाटी लगाकर रहता है। कहानी में यह भी संकेत है कि समाज में जो ईमानदार लोग हैं, उसे बदनाम करने के लिए राजनेताओं द्वारा हर तरह के हथकंडे अपनाए जाते हैं। दीपनारायण झा जैसे उच्च आदर्श और विचारवाले शिक्षक के साथ ऐसा ही होता है। विधायक जोगी साव को बलि का बकरा बनाते हुए कहता है– "कोर्ट में तुम्हें बस इतना कहना है कि दीपनारायण झा के कहने पर तुमने दंगे को अंजाम दिया है।" (पृष्ठ–49)। कहानी के अंत में जोगी साव को अपने कुकर्मों पर अफसोस होता है। वह अपनी पत्नी से कहता है– "मैंने जो भी पाप किया, बाल–बच्चों की खातिर किया, लेकिन आज एक देवता समान आदमी पर इल्जाम लगाते हुए मुझे जितनी ग्लानि हो रही है, इससे पहले कभी नहीं हुई।" (पृष्ठ–50)। लेखक जोगी साव के माध्यम से स्पष्ट कर देते हैं कि अब देश की भोली–भाली जनता इन भ्रष्ट शासकों के बहकावे में आनेवाली नहीं है और अब देश में धर्म, जाति और संप्रदाय की राजनीति नहीं चलेगी।

'नागपाश' कहानी दलित समस्या पर केन्द्रित है। गाँव का धर्मवीर सिंह जो राजपूत परिवार का है, शहर में आकर रामचन्द्र रविदास के नाम पर नौकरी करता है। आश्चर्य की बात यह है कि धर्मवीर सिंह को रविदास

अर्थात् दलित बनकर सरकारी सुविधा लेने से परहेज नहीं है, पर गाँव में रविदास कहलाने से परहेज है। अन्ततः धर्मवीर अपने ही जाल में फँसता चला जाता है। एक तरफ जाति की मर्यादा, तो दूसरी तरफ नौकरी की चिंता। लेखक ने इसे ही नागपाश कहा है। कहना न होगा कि 'नागपाश' आज के समाज की झूठी मर्यादा और उसमें फँसे व्यक्ति की दास्तान है।

'जीवन खेल–तमाशा' कहानी परंपरागत कुसंस्कृति तथा कर्मकांडों के विरोध की कथा है। कर्मकांड ब्राह्मणवादी संस्कृति की देन है, जिसने वर्षों से समाज को अपने जाल में फँसाकर रखा है। आधुनिक पीढ़ी इसे स्वीकार करने के पक्ष में नहीं है। यही कारण है कि कथानायक दिवाकर की माँ सत्यनारायण व्रत–कथा के पश्चात् जब उसे ब्राह्मण के पैर छूकर आशीर्वाद लेने के लिए कहती है तो वह इसका विरोध करता है। "व्रत–कथा सुनने के उपरांत माँ मुझे उस पंडित के चरण छूकर उन्हें दक्षिणा देने के लिए कहती। उस समय मेरा मन अंदर ही अंदर विद्रोह करता। मैं जानता था कि वह दिनभर गाँजा के नशे में टुन्न रहता और छोटी–मोटी चोरियों के इल्जाम में कई बार जेल जा चुका है। ऐसे व्यक्ति के चरण छूने में मेरे मन में घोर घृणा उपजती" (पृष्ठ–70)। लेखक के इस कथन से इन पोंगा–पंडितों का चरित्र सामने आ जाता है। दिवाकर की माँ पुराने खयालात की है। वह रोज नहा–धोकर रामायण की पूजा करती है। एक दिन दिवाकर ने बिना नहाये उस ग्रंथ को छू लिया है। उसकी माँ भड़क उठती है, क्योंकि ऐसा करके उसने माँ की दृष्टि में सत्यानाश कर दिया। माँ की तरफ से आदेश हुआ कि वह नहा–धोकर रोज ही रामायण पढ़े। लेखक के शब्दों में– "मानस–पाठ करने में मुझे कोई दिक्कत नहीं थी, लेकिन स्नान, पूजा–पाठ जैसे कर्मकांड पर मेरा विश्वास नहीं था।" (पृष्ठ–72)।

इस संग्रह की 'डरे हुए लोग', 'गाली', 'और आदमी..?', 'सुखी आदमी', 'बहेलिया', 'प्रतीक्षा', कारोबार', 'सभ्य बस्ती', प्रतिक्रिया', झूठा–सच', 'भोलू सियार का राज–पाट', आत्मविश्वास', 'पथ–प्रदर्शक', 'गृह–प्रवेश', 'दीया और बाती', 'शिक्षित गाँव' आदि लघु–कथाएँ विभिन्न दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण रहा है। 'डरे हुए लोग', 'गृह–प्रवेश' तथा 'और आदमी...?' समाज में व्याप्त अंधविश्वास, जाति–पाँति, ब्राह्मणवादी संस्कृति एवं पाखंडियों पर प्रहार करते हुए एक स्वच्छ सांस्कृतिक विरासत की माँग करता है। 'गाली' और 'पथ–प्रदर्शक' लघु–कथा तात्कालीन भ्रष्ट राजनेताओं की चरित्रहीनता एवं दिखावटी देशभक्ति को उजागर करता है कि पार्टी का कार्यकर्ता कभी भी जनता को सही रास्ता नहीं दिखाता है। एक अनजान शहर में जब लेखक पार्टी के एक कार्यकर्ता से अपने गन्तव्य तक पहुँचने का रास्ता पूछा, तो वह उसे गलत रास्ता बता देता है। एक बूढ़ा आदमी लेखक को सही रास्ता बताते हुए सतर्क करता है– "तुम्हारा गन्तव्य यहीं पास में है बेटा! तुम फलाँ गली से पैदल चलकर पंद्रह मिनट में वहाँ पहुँच सकते हो। तुम इनकी बातों में न आओ। ये लोग या तो खुद गुमराह हैं या तुम्हें गुमराह कर रहे हैं। आजादी के बाद से ये लोग जनता के साथ यही सलूक करते रहे हैं।"(पृष्ठ–116) 'कारोबार' और 'झूठा–सच' भी भ्रष्ट नेताओं,कम्पनियों और अफसरों के झूठी बयानबाजी की कथा है। लेखक के शब्दों में– "बाबूजी, झूठ तो सभी बोल रहे हैं। जितनी बड़ी कंपनी उतना ही बड़ा झूठा विज्ञापन, जितना बड़ा नेता उतना ही झूठा भाषण।" (पृष्ठ–105)। 'भोलू सियार का राज–पाट' यह सिद्ध करता है कि जनता के खून को चूसकर ही शासक वर्ग अपना राजपाट कायम किए हुए है। अतः हमें ऐसे शासक की तलाश करनी चाहिए, जो बिना खून चूसे हमे सुंदर शासन दे सके। लेखक कहते हैं–"तबसे जंगल के जानवर ऐसे राजा की तलाश में हैं, जो उन्हें बिना खून के ही सुंदर शासन दे सके।" (पृष्ठ–109)।

'हादसा', 'दीया और बाती', 'बहेलिया' आदि कथाएँ मनुष्य की मनुष्यता पर प्रश्नचिह्न लगती हैं। कथा में दिखाया गया है कि एक दुर्घटना में मारे गए एवं घायल लोगों की सहायता के लिए कोई सामने नहीं आता है, जबकि एक कौए की दुर्घटना में मारे जाने पर हजारों कौए जमा हो गए। उसी प्रकार 'दीया और बाती' में बस दुर्घटना के समय बटमार किसी के बैग छीनने में व्यस्त हैं, तो प्रेस–रिपोर्टर घायल–मृत लोगों की तस्वीर खींचने में व्यस्त हैं, पर घायल लोगों की सहायता के लिए कोई सामने नहीं आ रहा है। कुछ स्थानीय लोग इस बचाव कार्य में आगे आते हैं। लेखक कहते हैं–"मुझे लगता है इस सघन अंधेरे में कुछ दीयों में अभी तक तेल और बाती है। जबतक इन दीयों में तेल और बाती है, तबतक इस अंधेरी दुनिया में थोड़ी मानवता बाकी है।"(पृष्ठ–135) 'बहेलिया' कथा रंगभेद,जातिभेद, धर्मभेद आपसी द्वेष–कलह, घृणा एवं मतभेद को भूलकर एवं एक रंग में ढलकर समाज के विकास की बात करती है।

'सभ्य–बस्ती' और 'प्रतिक्रिया' स्त्री जीवन पर जुल्म, अत्याचार और शोषण की कथा है। 'प्रतिक्रिया' में जहाँ स्त्री अपने ही पति द्वारा प्रताड़ित होती है, वहीं 'सभ्य–बस्ती' में वह सभ्य समाज द्वारा प्रताड़ना और शारीरिक शोषण का शिकार होती है। वर्तमान सभ्य समाज का यही स्वरूप तैयार हुआ है। 'प्रतिक्रिया' में लेखक एक बच्ची के माध्यम से कहते हैं–"मुझे लगा, जैसे पापा तुम्हें मारते हैं, उसी तरह गुड्डा भी मेरी गुड़िया को थप्पड़ मारेगा।" (पृष्ठ–103)। 'शिक्षित गाँव' लघुकथा में लेखक ऐसे समाज पर व्यंग्य करते हैं–"अब गाँव की छाती पर नागिन की तरह तारकोल की सड़क लेटी है। कंधे पर हाई–वोल्टेज तार लादे दैत्याकार खंभे खड़े हैं। गाँव में अस्पताल, विद्यालय, बैंक और बाजार है। अब लोगों के दिलों की तरह ताजिये का आकार भी छोटा हो गया है। अब ताजिया हिंदुओं के दरवाजों पर नहीं आता। मुसलमान हिन्दू के अखाड़े में कुश्ती खेलने नहीं आते हैं। अब हमारा गाँव शिक्षित हो गया है।" (पृष्ठ–137)। कहना न होगा कि भूमंडलीकृत शिक्षा ने समाज में कुसंस्कृति को ही उत्पन्न किया है।

'सुखी आदमी' लघुकथा में सुख को पारिभाषित किया गया है। सुखी वह है जो संतुष्ट है। एक चायवाला कहता है–"बाबू, मैं चैन की बंशी अभी भी बजाता हूँ। मुझे उन लोगों पर तरस आता है, जिनके जीवन में पैसों का योग है, लेकिन भोग नहीं। उनके पास बढ़िया पलंग है, पर नींद नहीं; बढ़िया भोजन है, पर भूख नहीं। अब मुझे देखिये, अफड़कर खाता हूँ और बिथरकर सोता हूँ।"(पृष्ठ–91) 'आत्मविश्वास' कथा के माध्यम से कथाकार कहते हैं कि इस संसार में ईश्वर नाम की कोई चीज नहीं है। मनुष्य की शक्ति, उसका आत्मबल और आत्मविश्वास ही श्रेष्ठ है, जिसपर कायम रहकर वह सफलता प्राप्त कर सकता है।

इस संग्रह की अन्य कथाएँ एवं लघुकथाएँ भी भाव और कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। लेखक को लोक–भाषा, लोक–संस्कृति एवं लोक–परंपरा में अटूट विश्वास है। यही कारण है कि वे अपनी रचनाओं में इसका पूरा ख्याल रखते हैं। अधिकांश कथाओं में आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है, जिससे कथानक में विश्वसनीयता बनी हुई है। भाषाई दृष्टिकोण से इनकी कहानियाँ कहीं भी बोझिल नहीं हुई है। उनकी बोली में 'अंगिका' का मिठास है, जो सहज ही अपनी तरफ आकर्षित कर लेता है। ऐसे कथाकार से हिन्दी साहित्य को काफी उम्मीदें हैं।

पुस्तक–'लघुकथा' (कहानी संग्रह) लेखक–रविशंकर सिंह
प्रकाशक–बौधि प्रकाशन, जयपुर,
मूल्य 120/–

समीक्षा

सूखती संवेदना को सींचती कविताएँ

अरविंद अवस्थी
श्रीधर पांडेय सदन
बेलखरिया का पूरा, मीरजापुर (उ.प्र.)
मो– 9161686444

कवि भोलानाथ कुशवाहा का चौथा कविता संग्रह 'वह समय था' साहित्य जगत् में चर्चित हो चुका है। इस संग्रह को उन्होंने आठ उप शीर्षकों के अंतर्गत रखा है। ऐसा उन्होंने पाठकों की सुविधा के लिए किया है। कवि कुशवाहा की कविताएँ भाषिक बाजीगरी से दूर हैं, बिल्कुल उनकी तरह सहज, किन्तु विचारों की गहराई अथाह है उनमें। ये कविताएँ प्रगतिशील मानवीय मूल्यों की स्थापना का प्रयास करती हैं। वर्तमान जीवन की विद्रूपताओं–विडंबनाओं के विरुद्ध प्रतिरोधी स्वर मुखर करती हैं। सामाजिक अराजकता से आहत आदमी में संघर्ष करने का जज्बा पैदा करती हैं। इन कविताओं में संतुष्टि की शीतलता नहीं, बल्कि बेचैनी और अकुलाहट की तपिश है। इस संग्रह में मध्यमवर्गीय समस्याओं का स्वाभाविक और सहज चित्रण है।

कुशवाहा जी की कविताओं में अतीत की स्मृतियाँ हैं। मोहभंग है तो पर्यावरण के प्रति चिंता भी है। मनुष्य की क्रूरता और उसकी हिंसक प्रवृत्तियों का अक्स भी है। स्त्री विमर्श की साक्षी बेहतरीन कविताएँ हैं तो पितृसत्ता के बढ़ते प्रभाव से चिंतित होती कविता भी है। समाज में व्याप्त अंधविश्वास के साथ बाजार के आधिपत्य और सूखती संवेदनाओं को भी समेटने की कोशिश की है। आपकी कविताएँ सूखती संवेदनाओं को पानी देकर जिंदा रखने का काम पूरी क्षमता से करती हैं। ये कविताएँ भले ही मुक्तछंद की होने के कारण स्वर–ताल और संगीत न पैदा करें, किंतु इन कविताओं का अपना एक नाद है–अनहदनाद। यदि देखने और सुनने का प्रयास किया जाय, तो हर मनुष्य के भीतर एक कविता को चलते–फिरते देखा जा सकता है। वेदव्यास का कहना है कि हर मनुष्य में एक कविता होती है और हर कविता में एक लोक बोलता है। कबीर ने जिसे गाया है और तुलसी ने जिसे रचाया है तथा सूरदास ने जिसे नचाया है, वह सब कविता का अनहदनाद ही है। इनकी कविताओं को समझने के लिए कविता की जमीन को समझना जरूरी होगा। आप कवि भोलानाथ कुशवाहा की कविताओं को यथार्थ के धरातल पर निडरता और निष्पक्षता से खड़ी पायेंगे। अवसर हाथ लगने पर ये कविताएँ शासन–सत्ता के विरुद्ध भी आवाज बुलंद करने से गुरेज नहीं करतीं। जनकवि होने की यह शर्त भी है। कवि नागार्जुन कभी शासन के विरोध में तनकर खड़े हो जाते थे–'खड़ी हो गई चाँपकर कंकालों की हूक। नभ में विपुल विराट सी शासन की बंदूक।।जली ठूँठ पर बैठकर गई कोकिला कूक। बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक।।' नागार्जुन और त्रिलोचन की तरह कवि भोलानाथ अपनी कविताओं के साथ सर्वहारा वर्ग के पक्ष में खड़े मिलते हैं। जब भी उनको लगता है कि शासन की ओर से ऐसा कुछ किया जा रहा है, जिससे वंचित और कमजोर वर्ग के लोगों को कोई लाभ नहीं हो रहा है, तो उनकी कलम बोल उठती है। धर्म, जाति अथवा भाषा के नाम पर जब भी सामाजिक एकता पर कुठाराघात होता है, तब कवि की कलम बोल उठती है। जब किसी भूखे को नजरअंदाज कर लोग उत्सव मनाने के लिए बेचैन दिखते हैं, तब कवि छटपटा उठता है और उसकी कलम बोल उठती है–

''एक आदमी
हाथ फैलाए खड़ा है
और रोकर
कह रहा है
बाबा! भूख लगी है
एक दूसरा आदमी है
जिसे चिंता है
पूरे शहर में
झंडियाँ फहराने की।'' (पृष्ठ 83, उसी सड़क पर)

वर्तमान राजनीति धर्म और भगवान को हथियार बनाकर लोगों को एक–दूसरे का दुश्मन बनाने में लगी है। किसी के साथ सत्ता है, तो किसी के साथ सत्ता हथियाने की कोशिश में लगा विपक्ष। देशभक्त और देशद्रोही के बीच इस समय फर्क करना इतना आसान हो गया है कि किसी को भी एक क्षण देशभक्त कहा जा सकता है, तो दूसरे क्षण देशद्रोही। कवि भोलानाथ कुशवाहा की 'पकडू सब्जीवाला' और 'राष्ट्रभक्त' कविताएँ इस संदर्भ में नया आलोक दिखाती हैं–

''पकडू का आलू–बैगन
पकडू का टमाटर–पालक
आलीशान था
सिर्फ पकडू मुसलमान था
पकडू की
उम्र निकल गयी
अब बुढ़ापे में
उसे समझ में आया
कि वह
देशद्रोही इंसान था।'' (पृष्ठ 80, पकडू सब्जीवाला)

''वह खूब झूठ बोलता है
वह दुकान में
कम तौलता है
वह कचहरी में
गलत दलील करता है
वह मरीज के
जीवन से खेलता है
वह राष्ट्रभक्त है
सिर्फ इसलिए
क्योंकि
भारत माता की जय
बोलता है।'' (पृष्ठ 81, राष्ट्रभक्त)

भोलानाथ जी लम्बे समय तक पत्रकारिता से जुड़े रहे, इसलिए उनका साहित्य सामाजिक सरोकारों से ज्यादा करीब है। 'आज' अखबार में समाचार संपादक का दायित्व निभाते हुए उन्होंने साहित्य सृजन किया। मीडिया लोकतंत्र का महत्त्वपूर्ण स्तंभ होता है। मीडियाकर्मी होने के नाते भोलानाथ जी लोकतंत्र के प्रति विशेष समर्पित हैं। इस संग्रह की कविताओं में अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्थितियों से घर एवं बाहर जूझते आदमी की अनुगूँज सुनाई पड़ेगी। आदमी समय से भी तेज भागने की होड़ में हाँफ रहा है। वह कभी सीधा तो कभी शार्टकट रास्ता भी अपना रहा है। भीड़ का हर आदमी सिरपर लोकलुभावने सपने लेकर लगातार आगे बढ़ने की जद्दोजहद कर रहा है। दूसरे से आगे निकलने के चक्कर में वह अपनों को भी टक्कर दे रहा है और रास्ता जाम कर रहा है। चारों ओर चीखें सुनाई पड़ती हैं, किंतु उन चीखों को गंभीरता से सुनने और समझने की फुरसत किसी को नहीं

है।हर आदमी के गले में कोई डोर बँधी है, जिसका नियंत्रण किसी और के हाथ में है।'डिपवाली चाय' कविता में आदमी की मजबूरी का यथार्थ चित्रण मिलता है–

''एक डोर बँधी है
उसके गले में
जिसका नियंत्रण
ऊपर से है
किसी और के हाथों में है
नीचे
उसको निचोड़ने में जुटे हैं
सचमुच
वह डिपवाली चाय
बच गया है
जो पूरी तरह से
निचुड़ने के बाद
फेंक दिया जाएगा
कचरे की मानिंद।'' (पृष्ठ 22, डिपवाली चाय)

मुक्तिबोध कविता में प्रतिबद्धता की कला का रहस्योद्घाटन करते हैं।किस प्रकार एक व्यक्ति की संवेदना समाज की अनुभूति में ढल जाती है, संवेदना लोकसंवेदना में रूपांतरित हो जाती है और आत्माभिव्यक्ति परम अनिवार आत्मसंभव अभिव्यक्ति हो जाती है। वरिष्ठ आलोचक डॉ. रमाकांत शर्मा लोकसंवेदना को बड़ी चीज मानते हैं–''वह महज सहानुभूति नहीं, हमारी जाग्रत ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव है, सचेतन प्रक्रिया है। सिंपैथी या फीलिंग से बढ़कर सेंसेशन की हदें छूती है संवेदना। गोचर जगत का ज्ञान संवेदनाओं से संभव है। इसीलिए कविता में संवेदना उसका आवश्यक गुण मानी गयी है। समय और समाज का यथार्थबोध इसी लोक–संवेदन– स्पर्श से होता है।''

कवि भोलानाथ कुशवाहा की कविताएँ समय में जीकर उसका संक्रमण भी करती हैं। ये कविताएँ सिर्फ कला या कल्पना में नहीं जीवन में साँस लेती हैं। इनकी कविताओं में घर ही नहीं , टूटते हुए लोगों के प्रति गहरी संवेदना है। कवि कहता है–शब्द असहिष्णु नहीं होते। जिंदा आदमी को मुर्दा बनाने की कोशिश को नाकाम करने का कवि का प्रयास सराहनीय है। उसे नकाब पहनकर 'नुमाइश' लगानेवाले लोग नापसंद हैं। वह किसी की मजबूरी का उपहास उड़ानेवालों की भर्त्सना करता है। औरतों के लिए कवि का स्पष्ट संकेत है 'कुछ और बड़ी हो जा'।'मैं घंटाघर चौराहे से बोल रहा हूँ' कविता एक ताजा खबर के साथ प्रस्तुत होती है और कई संकेत देती है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि ये कविताएँ पाठकों को एक नया एहसास दिलाएँगी। कवि को असीम शुभकामनाएँ।

पुस्तक–'वह ससमय था', कवि–भोलानाथ कुशवाहा, प्रकाशक– अंजुम प्रकाशक, प्रयागराज,
मूल्य 250/, 150/

मैंने बस यूँ ही ठिठककर

किशोर कुमार अग्रवाल
डी.आई.जी
रायपुर, छत्तीसगढ़
9425212340

पलटकर पीछे देखा तो अब तक तयकिया
जीवन फैला पडा दिखा
सारा का सारा एक विस्तार में ।

क्षितिज की ओर मेरा बचपन पड़ा था
माँ थी, बाबूजी थे, मेरे खिलोने थे।
स्लेट के साथ वर्णमाला व कायदा था ,
छुपाछुपाई के साथी, इमली और मिठाईयाँ थी।

बाद उसके , गलबहियाँ डाले दोस्त थे ।
आम के पेड़, खेत, बीजगणित की भूलभुलैया।
अ बराबर बारह और ब बराबर बीस
तो बताओ स बराबर कितने?बाप रे बाप !

भीगती मसें, नई उत्सुकताएँ, प्रश्न थे ।
उलझे उलझे से उत्तर फिर प्रश्न दर प्रश्न ।
कुछ झाँकती सी खिड़कियाँ और बारजे ,
कुछ अब तक याद रहे स्पर्श अनचीन्हे ।

पढ़ाई, परीक्षा, आवारगी, बेचैनी थी ।
छोटी छोटी चोरियाँ, ताका झाँकी ,
भविष्य की कल्पनाएँ सोच उधेड़बुन ।
पकते बालोंवाली माँ और गंभीर होते पिता।

सहपाठिनी के साथ विचरती फिर तुम थी
हँसती, खिलखिलाती, सकुचाती, अल्हड़ सी
कोई तिनका हमेशा होता था दाँतों में तेरे
कालेज फंक्शन में मंच परे मेरा सामान सहेजे

तुम थी मेरी सारी उत्सुकताओं का समाधान
मेरी बेसिर–पैर कविताओं की श्रोता व प्रसंशक।
सारी झिड़कियों उपेक्षाओं से निजात दिलाती
छोटे कामों का निरीक्षण करती मान देती तुम।

मैं देखता रहा उस फैले विस्तार में लगातार,
जहाँ बस तुम थी तुम थी तुम थी सब तरफ
फिर धुँधलाने लगा सारा कुछ इस ओर का,
तुम्हारा जाना, रेलवे का स्टेशन डिब्बा, तुम।

बस फिर इधर कुछ साफ और सकारण नहीं,
बस यूँ ही सी आपाधापी–सी बिखरी जिंदगी।
नौकरी शादी रिश्तेदार बच्चे समारोह संस्कार,
एक धुंध–सी फैली हुई सब पर तू क्षितिज तक।

समीक्षा

पाठांतर के मर्मस्पर्शी विविध रंग

डॉ0 शशि प्रकाश चौधरी
201 नानक पैलेस
कोटा (राजस्थान)
मो. 9414943903

यह घायल पाठकों का दौर है। अब एकाग्र पाठक धर्म का निर्बाह कठिन है। माध्यमों के मेले में शब्दों का अकेलापन और निर्वासन दोनों बढ़ गया है। वरुण कुमार तिवारी की समीक्षा कृति 'पाठांतर' को पढ़े हुए सिद्दत से यह बात मेरे मन में उठती रही। हिन्दी एक विशाल भूभाग की भाषा है। कोसी कछार से लेकर बालूचरों के फैलाव तक हिन्दी कई रंगों–तेवरों में सजती–सँवरती, बनती और रचती चली जाती है। हम इसके रचयिताओं से बेखर रहते हैं। 'पाठांतर' में संकलित लेखकों का रचना वैभव इस बात का प्रमाण है।

इस पुस्तक को पढ़ते हुए ओमप्रकाश भारती के 'नदियाँ गाती हैं' से परिचित हुआ। हिन्दी पट्टी नदी मातृक भूभाग है। हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय' एवं अमृतलाल वेगड़ ने नदियों को जिस अनुराग एवं अनुसंधान के साथ हमारे मन–मस्तिष्क में उतारा है, उसी शृंखला की कड़ी हैं ओमप्रकाश भारती। कोसी के मिथ और लोक इतिहास के अद्वितीय अनुसंधायक के प्रति मेरी जिज्ञासा बढ़ गयी है। उनसे मिलने की उत्कंठा हो रही है। यही 'पाठांतर' की खूबी है।

एक सार्थक आलोचना कृति डाकिये का काम करती है। तिवारीजी में यह गुण कूट–कूट कर प्रवाहित हो रहा है। उन्हें पता है कि कहाँ किस सुदूर छोर पर एक सार्थक कृति अपने उजास के साथ प्रकट हुई है। उनका आलोचक मन उस नवागत कृति का पीछा करती है। 'रेत की नदी तक' हितेश व्यास की एक महत्वपूर्ण काव्य रचना है। हितेश व्यास तीन दशकों से अपनी रचनात्मा उष्मा विविध पत्र–पत्रिकाओं में अनवरत बिखेरते रहे हैं। वे निस्संदेह अपने समय के दुख–द्वन्द्वों के ईमानदार प्रस्तोता हैं। लेकिन हिन्दी के आलोचक समाज में वे कनिष्ठिकाधिष्ठित नहीं हैं। उनके ताप–तेवर की औचित्यपूर्ण मीमांसा वरुण कुमार तिवारी ने 'पाठांतर' में की है। व्यावहारिक आलोचना का सबसे महत्वपूर्ण पहलू होता है मार्मिक कृति की पहचान। जब आलोचक विचारधारा के कठघरे में कृतियों की पहचान करता है, तब ज्यादती होती है। वरुण कुमार तिवारी इस दृष्टिकोण से ग्रसित नहीं हैं। वे अनुराग एवं उत्साह के साथ हितेश व्यास की कृति का मूल्यांकन एवं सामयिक कविताओं में उनके अवदान को रेखांकित करते हैं। उदाहरण के तौर पर राजकमल पर लिखा उनका आलोचना लेख है। राजकमल चौधरी हिन्दी के सर्वाधिक बदनाम एवं शापित कवि हैं। उनकी मृत्यु के पैंतालीस साल बाद भी उनका समग्र रचना संसार विविध पत्र–पत्रिकाओं के जर्द पन्नों में खोया पड़ा है। गिंसवर्ग एवं मलयराय चौधरी के समानधर्मा –सुबन्धु इस कवि का वरुणकुमार ने मूल्यांकन किया है। इस छोटे–से आलेख में राजकमल चौधरी की कविता की प्रतिष्ठान विरोधी एवं उनके जनपक्षधर गुणों की पड़ताल है। राजकमल चौधरी ध्रुवतारा की तरह अकविता के परिदृश्य पर अवतरित हुए थे। उनकी रचनाओं की अनुपलब्धता के बावजूद हम उन्हें भूला नहीं पाये हैं। संकलन का यह आलेख इसका सबूत है।

'गीतांजलि' विश्व की सर्वाधिक अनूदित कविता–कृति है। वरुण कुमार तिवारी ने इसके एक बीहड़ अनुसंधायक से हमारी मुलाकात करायी है। देवेन्द्र कुमार देवेश जैसे खोजकर्मी के प्रति मन कृतज्ञ एवं नम हो उठा है। इस हिन्दी पट्टी में हिन्दी के आत्म संघर्ष को संजोने एवं परखने का रत्तीभर भी उत्साह एवं धीरज नहीं है। ऐसे में देवेश का खोजकर्म आशा का संचार करता है। देवेश ने 'गीतांजलि' के तीन गद्यानुवादकों एवं अठारह पद्यानुवादकों को ढूँढ़ निकाला है। यह भूसे के ढेर में सूई निकालने सरीखा है। महान फिल्मों के प्रिंट या स्थायी महत्व की पुस्तकें या पुरानी पत्रिकाओं की जिल्दें यों गायब हैं, जैसे चील के घोंसले से मांस। देवेश की नजर में गीतांजलि के अनुवादकों से मिलना हिन्दी पट्टी के जागरूक अनुवादकर्मियों का पुण्य स्मरण भी है।

विविधता 'पाठांतर' की जान है। यह पूरी समीक्षा कृति कई स्तरों एवं रूप छवियों को स्वयं में समाए हुए हैं। हिन्दी रचनाकारों में एक ऐसा समय आया था, जब अधिकांश शिखर साहित्यकार आकाशवाणी की जादुई स्वरलोक की गिरफ्त में थे। ऐसे ही साहित्यकार है मधुकर गंगाधर। उन्होंने आकाशवाणी में बिताये पलों को आत्मकथात्मक रचना 'हवा में उनतीस वर्ष' में दर्ज किया है। साहित्यकार सत्ता राजनीति के दबाववश अपनी रचनात्मक आजादी की रक्षा में आकाशवाणी से मोहभंग के शिकार हुए। मधुकर गंगाधर, गंगेश गुंजन, नंद भारद्वाज, लीलाधर मंडलोई कुछ अपवाद नाम हैं, जो आकाशवाणी की हवाओं में तैरते रहे। घुटन एवं सत्ता के अँधेरे ने आकाशवाणी की विश्वसनीयता को संदेह के स्याह घेरे में धकेल दिया। आकाशवाणी के रोचक आत्मकथात्मक आख्यान की ओर वरुण कुमार तिवारी ने हमारा ध्यान दिलाया है।

बिहार, हिन्दी का हासिया है। दिल्ली की निगाह वहाँ के रचनाकारों पर तनिक देर से पहुँचती है, लेकिन वरुण कुमार तिवारी का यह कर्मप्रदेश है। वे इस अंचल के महत्वपूर्ण रचनाकर्म को अपने रचना कौशल से उजागर करते हैं। 'पाठांतर' की यह खूबी उल्लेखनीय है कि आलोचक उन महत्वपूर्ण रचनाओं तक हमें पहुँचाते हैं, जो स्मरणीय होने के बावजूद नजरों से ओझल थी। इस सजग आलोचक का विवेक स्थावर नहीं, यायावर होता है। समीक्ष्य पुस्तक में शामिल प्रो. कैलास बिहारी सहाय 'हिन्दी कहानी के सौ वर्ष' तथा डॉ. सुबोध मंडल की गवेषणा कृति 'उपन्यास साहित्य में अनुस्यूत समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण' का वरुण कुमार तिवारी ने तल्लीन होकर विश्लेषण किया है। हैदराबाद से निकलनेवाली नवलेखन की पत्रिका 'कल्पना' ने 'प्रोफेसरी हिन्दी' नाम का स्तंभ चलाया था। विश्वविद्यालय की दुनिया से हिन्दी का गहरा जुड़ाव रहा है। स्वाधीनता से पहले एवं उसके बाद से आजतक हिन्दी लेखकों की बड़ी संख्या विश्वविद्यालय के अध्यापन कर्म से जुड़ी रही है। शालिग्राम उपध्याय इस स्तंभ के प्रस्तोता थे। दोष दर्शन ही इस स्तंभ की विशेषता थी। लेकिन आज इस पर ठहर कर सोचने की जरूरत है। आज हिन्दी का एक जीवंत समूह प्राध्यापक हैं। उन्हें हिकारत से देखने की बजाय गंभीरता से लेने की जरूरत है। वरुण कुमार तिवारी के विश्लेषण से पता चलता है कि हिन्दी का अध्यापकीय संसार अभी भी समकालीन एवं पूर्ववर्ती रचनाकारों के गंभीर अध्येता हैं। पत्रकारों की तकनीक सम्पन्न दुनिया इतने समकालीन हो गये हैं कि उन्हें आज से दो दशक पूर्व की तरतीबवार कोई जानकारी नहीं है। 'पाठांतर' में हिन्दी अनुसंधान के रचनात्मक उड़ान की दिलचस्प विवेचना एवं खबर है। यह एक सुखद एवं भूलने के विरुद्ध सत्याग्रह सरीखा है।

इस समीक्ष्य कृति का नाम 'पाठांतर' है। इसमें विविध रुचियों एवं भिन्नपथ से आये बहुविध सृजनधर्मी कसौटी पर हैं। यह केवल एक विधा विशेष पर केन्दित किताब नहीं है। भिन्न आस्वाद की परख इसकी विशेषता है। कवि, गजलकार, यात्री, अनुसंधायक, अनुवादकर्मी, रेडियो प्रसारक, नदी किनारे के यायावर सब अपने रंग एवं छटा के साथ संकलन में उपलब्ध हैं। समीक्षक ने बिना राग–द्वेष के हिन्दी की विविधवर्णी दुनियाँ को परोस दिया है। सारे व्यंजनों में स्वाद है। रचना–पाठ समाप्त होकर भी समाप्त नहीं होता है, एक चाहत की प्यास जागता है। उस संपूर्ण कृति के सुरंग में प्रवेश की इच्छा होती है, जिसपर समीक्षा लिखी गयी है। कुसुम खेमानी एवं विनोददास के समक्ष अज्ञेय ने एक इंटरव्यू में स्वीकार किया था–'हमारे समाज में आलोचना के दो काम होते हैं।

एक तो साहित्य रचना के पीछे रहे, उसकी व्याख्या करें। उससे जो नये मूल्य प्रकट होते हैं, उसको समाज तक पहुँचाएँ और समाज को उस साहित्य की समझ को बताए। दूसरी तरफ आलोचना का यह भी काम होता है कि समाज में जो परिवर्तन होते हैं, उसे रचनाकर्मी तक पहुँचाएँ कि समाज इस तरह बदल रहा है और इसलिए साहित्य में इस तरह के परिवर्तन होने चाहिए। 'कुछ रेत.... कुछ सीपियाँ.... विचारों की : कुसुम खेमानी) मुझे यह स्वीकार करने में तनिक भी हिचक नहीं है कि वरुण कुमार तिवारी ने मेरे पाठक मन की उत्सुकता जगायी है। यही इस 'पाठांतर' की सार्थकता एवं प्रासंगिता है।

रचना के पीछे छिपे जीवन मूल्य के उद्‌घाटन में वरुण कुमार तिवारी सफल रहे हैं। इस आपाधापी के मौसम में शब्द के बचे रहने की यह तसल्ली कोई कम लाभांश नहीं है। 'पाठांतर' से गुजरते हुए एक और प्रासंगिक प्रश्न की ओर मेरा ध्यान गया। हिन्दी में पुस्तक समीक्षकों की एक पेशेवर फसल तैयार हुई है। प्रकाशक इन स्थापित स्वनामधन्यों के पास समीक्षार्थ पुस्तकें भेजते हैं। वे कितना पढ़ते हैं मालूम नहीं। वे तटस्थ होकर समीक्षा करते हैं, यह दावा कठिन है। समीक्षा के इस चक्राकार मायालोक के तिलिस्म को तोड़ना बेहद जरूरी है। वरुण कुमार तिवारी के पाठांतर से गुजरते हुए यह यकीन होता है कि ये हिन्दी के चंद बेलौस एवं गंभीर समीक्षकों में हैं। समीक्षक ने ठकुरसुहाती नहीं की है, रचना के मर्मस्थलों से पाठकों की पहचान करायी है।

पुस्तक–'पाठांतर', लेखक–वरुण कुमार तिवारी, प्रकाशक–विजया बुक्स, शाहादरा दिल्ली, मूल्य 225/–

ग़ज़लें

केशव शरण
सिकरौल, वाराणसी
9415295137

जमाने के सवालों को अलग रखना नहीं संभव
गजल के भी खयालों को अलग रखना नहीं संभव
यहाँ हैं भेड़िये भी, तेंदुए भी, शेर–चीते भी
यहाँ गुद–गुद गजालों को अलग रखना नहीं संभव
बड़े पीड़ित यहाँ के लोग हैं इमदाद थोड़ी–सी
इसी कारन दलालों को अलग रखना नहीं संभव
बनाये शांति रखनी है हमें हर हाल में यारो
उभर उठते बवालों को अलग रखना नहीं संभव
न जाने किस घड़ी इस बात को बन्दूक समझेगी
कि पत्थर, तीर–भालों को अलग रखना नहीं संभव
हुए मजबूर तो गोदाम के गोदाम लूटेंगे
कि खाली पेटवालों को अलग रखना नहीं संभव
सृजन, थाली, सियासत में मसाला चाह लेंगे तो
मिलावट के मसालों को अलग रखना नहीं संभव
बनाओ शायरी को इंकलाबी तुम भले कितना
नयन, लब और गालों को अलग रखना नहीं संभव

।।2।।
कभी जब एक जिद्दी,मतलबी,मगरूर हो जाये
यही इक रास्ता है दूसरा भी दूर हो जाये
सितम करता रहेगा नित्य गर कमजोर पर जालिम
बहुत मुमकिन बगावत के लिए मजबूर हो जाये
हमेशा खेलते रहना न अच्छी बात है कोई
पता कब हाथ से छूटे कि शीशा चूर हो जाये
जलाते हो जलाओ दिल मगर ये ध्यान भी रखना
न तुम भी साँस ले पाओ धुआँ भरपूर हो जाये
धरम की जात की दीवार पक्की है न टूटेगी
दरीचे ही खुलें इसमें यही मंजूर हो जाये
सनम मेरे अगर तू चाह ले दिल से भला मेरा
लगे इक पल नहीं हर दर्द–दुख काफूर हो जाये
मुहब्बत के दिये में चाँद–सूरज और तारे सब
अँधेरे दिन गुजरते जा रहे हैं नूर हो जाये

।।3।।
ये मनमानों की है सरकार पैमाना रहेगा क्या
बड़े चिन्तित हुए मयख्वार मयखाना रहेगा क्या
लुटेरे हुस्न के प्रतिदिन चढ़ाई कर रहे हैं जब
हमारे शहर का नामी परीखाना रहेगा क्या
जमाना है फरेबी और जालिम वो कि मत पूछो
लगा देता ठिकाने होश दीवाना रहेगा क्या
भटकती आत्माओं को यहाँ इक ठौर मिलता है
नगर विस्तार का ये दौर वीराना रहेगा क्या
किसी रंगीन उजाले से किसी रंगीन उजाले तक
शमा को ढूँढ़ता हर एक परवाना रहेगा क्या
किसी भी बात पर क्या एकमत होंगे नहीं सज्जन
यहाँ बस दुर्जनों के बीच याराना रहेगा क्या

।।4।।
सुहानी रात के सब दोस्त–यारों को विदाई दी
सवेरे के समय हमने सितारों को विदाई दी
नये मंजर यहाँ होंगे नये गुल बेल–बूटों में
यही तो सोचकर पिछले नजारों को विदाई दी
अपेक्षा जितनी मजबूती की थी वो आ गई थी क्या
कि हमने जल्दबाजी में सहारों को विदाई दी
गये ये और आये ये यही हर एक कहता था
इसी इक बात पर हमने हजारों को विदाई दी
नहीं था लौटना उनको मगर बाँधा भी क्या जाता
हमारी रामबगिया ने बहारों को विदाई दी
वो उतरे ही न घोड़ों से कि बतियाते जरा उनसे
खड़े रहकर किया स्वागत सवारों को विदाई दी
बड़ी बातों से होता क्या करम ही जब नहीं कोई
तो साधा मौन हमने भी लबारों को विदाई दी

।।5।।
बहाता मद्य का दरिया मगर पीने नहीं देता
तृषित जन को जमाना बा–खुशी जीने नहीं देता
मुहब्बत में हमारा यार कुर्ता फाड़ देता है
हटा देता सुई–धागा हमें सीने नहीं देता
अजब है मोह जीवन का अजब है खौफ दुनिया का
हमें मरने नहीं देता हमें जीने नहीं देता
नहीं हम हैं असुर कोई नहीं हम देवता कोई
मनुज हम हैं विधाता विष–अमिय पीने नहीं देता
खुशी होगी हमें गर मार डाले जान से बैरी
दिली जिससे मुहब्बत है वही जीने नहीं देता

।।6।।
फिजाओं में नमी जैसे घटाएँ छोड़ जाती हैं
चली जाती हसीनाएँ अदाएँ छोड़ जाती हैं
अजब ये है मुहब्बत में गजब वो मोड़ आता है
वफा की पुतलियाँ भी जब वफाएँ छोड़ जाती हैं
जुबानों से निगाहों की बड़ी है पुरअसर भाषा
दिलों में गूंजती रहती सदाएँ छोड़ जाती हैं
बड़ी हैं जिन्दगी से जिन्दगी में प्यार की घड़ियाँ
कि जो रंगीन सुख–दुख की कथाएँ छोड़ जाती हैं
जहां दुखदेह तनहाई वहाँ से मैं पहुँचता हूँ
वहीं लाकर मुझे तेरी सभाएँ छोड़ जाती हैं
मुझे लगता दिखायेंगी मुझे संसार सपनों का
हकीकत के उसी जुग में गुफाएँ छोड़ जाती हैं
उधर है राजपथ गर तो इधर जन– क्रांति की सड़कें
अजब–सी कशमकश दिल में दिशाएँ छोड़ जाती हैं

शोधपरक आलेख

सकारात्मक नकारात्मक से मिलता है (पॉजीटिव नीट्स निगेटिव)

सुभाषचन्द्र झा
सेवानिवृत्त बिहार प्रशासनिक सेवा
भागलपुर प्रमंडल, भागलपुर
9431208428

प्रेम का नाम सोचते ही नारी का ध्यान खुद ही आ जाता है, क्योंकि नारी और प्रेम का अलग करके देखा नहीं जाता। नारी के लिए मर्द का प्यार और मर्द के लिए नारी का प्यार एक दरवाजा होती है और इसी दरवाजे से गुजरकर सारे संसार की लीला दिखाई देती है। तड़पते हुए यह दरवाजा अपनी ओर बुलाता भी है और मिलता भी नहीं। प्यार का बीज जहाँ पनपता है मीलों तक विरह की खुशबू आती रहती है। यह भी एक हकीकत है कि प्रेम का दरवाजा जब दिखाई देता है, तो उसको हम किसी एक नाम से बाँध देते हैं। पर उस नाम में कितने नाम मिले हुए होते हैं, यह कोई नहीं जानता। शायद कुदरत भी भूल चुकी होती है। कि जिन धागों से उस एक नाम को सुनती है, वह धागे कितने रंगों के हैं, कितने जन्मों के होते हैं।

नारी प्रेम की गहराई में पूरी तरह उतर सकती है, नारी के लिए प्रेम की कोई विधि नहीं होती। नारी का होना जंगल को भी घर बना सकता है। नारी होना एक बहुत बड़ी घटना है। नारी मन का कमल प्रेम में खिलता है, अन्य किसी चीज में नहीं। मगर नारी कहाँ है?नारी का कोई अस्तित्व ही नहीं है। माँ का अस्तित्व है, बहन का अस्तित्व है, बेटी का अस्तित्व है, पत्नी का अस्तित्व है, पर नारी का कहीं अस्तित्व नहीं है। नारी का अस्तित्व उतना ही है, जिस मात्रा में वह पुरुष से संबंधित होती है। पुरुष का संबंध ही उसका अस्तित्व है। उसकी अपनी कोई आत्मा नहीं है। उसका अस्तित्व पुरुष के अस्तित्व में लीन है, पुरुष का एक हिस्सा है उसका अतिस्त्व। नारी के व्यक्तित्व का प्रेम असली आवाज है। नारी का आनंद बहुत अर्थपूर्ण है, क्योंकि वह घर का केन्द्र है।

और प्रेम ही नैतिकता का मूल मंत्र है। एक हँसती हुई, मुस्कुराती हुई नारी जिस घर में है, जिसके कदमों में प्रेम के गीत हैं, जिसके चलने से झंकार है, जिसके दिल में खुशी है, जिसे जीने का एक आनंद मिल रहा है, जिसकी साँस–साँस प्रेम से भरी है, ऐसी नारी जिस घर के केन्द्र पर है, उस सारे घर में एक नई सुवास, एक नया संगीत पैदा हो जाएगा। और एक घर का प्रश्न नहीं है, यह प्रत्येक घर का सवाल है–शांत, आनंद और प्रफुल्लता की स्थापना के लिए।

पुरुष सचमुच अगर प्रेम में हो तो फरेब नहीं करता, पाप नहीं करता; क्योंकि जहाँ प्रेम है, वहाँ पाप टिक नहीं सकता और नारी प्रेम में हो तो बिना कहे ही सब कुछ अपने आप समझ जाती है। नारी और पुरुष के बीच आकर्षण को ही प्यार नहीं कह सकते। प्रेम जीने की वजह बनता है। प्यार का अहसास निश्चित तौर पर अनोखा होता है, इसे हर कोई जीवन में महसूस करता है। यह प्रकृति के अनुरूप और स्वाभाविक रूप से होता है। मगर आकर्षण जब रिलेशन में बदलने लगे तो यह देखा जाता है कि वह कितना सहज और एक–दूसरे के अनुकूल है। आज जब रिश्तों की दर डोर कमजोर हो रही है तो ऐसे में प्रेम में व्यापक अर्थ को समझने की जरूरत ही जीवन में आपसी संबंध को नाम दे देना ही प्यार नहीं होता। किसी से प्रेम हो जाना जरूरत है और उसे हासिल कर लेना ही प्यार नहीं है। आप इसे निभाते किस रूप में हैं, यह भी महत्व रखता है। यह प्यार का अहसास ही है, जो जुनून पैदा करता है, फिर हर राह आसान हो जाती है।

नारी की सम्पूर्णता प्रेम में निहित है। पुरुष शायद प्रेम के महत्व को जानता ही नहीं, तभी तो वह नारी के साथ प्रेम में रहकर भी प्रेम से वंचित ही रह जाता है। जबकि नारी प्रेम में पूर्णता प्राप्त कर लेती है। जब आत्मा प्रेम के लिए समर्पित हो जाती है, तो देह अपनी सत्ता खो देती है और आत्मा के साथ देह भी समर्पित हो जाती है। प्रेम की जननी है नारी। आदि से लेकर अंत तक, सृजन से प्रलय की आखिरी बेला तक कुछ हो या न हो, पर प्रेम एकमात्र शाश्वत और सर्वविहित है। प्रेम के अभाव में न तो सृष्टि की कल्पना की जा सकती है और ना ही सुख की अनुभूति। वैमनस्यता, घृणा और ईर्ष्या भी जो प्रेम के विरोधी तत्व हैं, उनका भी अस्तित्व प्रेम के अस्तित्व में होने पर ही सार्थक है। यदि प्रेम नहीं है तो वैर भी नहीं है; क्योंकि प्रेम का ही अभाव और नाश वैरता को जन्म देता है।

प्रेम जगत का सर्वाधिक कोमल, सार्थक और संवेदनशील भाव है, जिसके बिना सारी सृष्टि निरर्थक है। अगर प्रेम के उद्‌भव और उत्पत्ति पर नजर डालें, तो प्रेम बस स्त्री तत्व के ममत्व का ही दूसरा रूप है। इक नारी के हृदय सरिता से छलकनेवाली कुछ बूँदें ही प्रेम की संज्ञा पाते हैं। विशाल हृदय धारण करनेवाली नारी अपने हृदयाकाश में संवेदनाओं व भावनाओं में लिपटे एक अनोखे प्रेम को छिपा कर रखती है। नारी के बिना सृष्टि संभव नहीं है और प्रेम बिना सृष्टि का संतुलित संचालन। नारी के प्रेम से ही स्थित बाल्यमन प्रेम की प्रतिमूर्ति बन जाता है। नारी सृष्टि की सबसे कोमलतम हृदय को धारण करनेवाली होती है। सृष्टि का एक ऐसा भाव, जिसके बस में इंसान क्या, भगवान भी मानव तन धारण करते हैं और उस जननी के कोख से उत्पन्न हो खुद को गौरवान्वित करते हैं। नारी ही सृष्टि है, संहार है, द्वेष है और प्यार है। उग्र रूप धारण करने पर यही रौद्र चंडी हो जाती है और सौम्य रूप में ये प्रेम की गंगा–सी बहती रहती है। जिस गंगा में डुबकी लगा नर और नारायण दोनों अपने अस्तित्व की धूमिलता दूर करते हैं।

नारी शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'न+अरि', जिसका कोई दुश्मन न हो। पत्नी से शत्रुता कैसी, माँ से वैर कैसा?नारी कई रूपों में बस प्रेम का संचालन करती है। माँ बनकर प्रेममयी आंचल में लोरी सुनाती है, पत्नी बन जीवन में हर सुख–दुःख के साथ निभाती है, बहन बन भाई की रक्षा हेतु व्रत रखती है तो पुत्री स्वरूप घर में लक्ष्मी का पदार्पण करती है। नारी जगत की आधारभूत सत्ता होती है, जो समस्त को इक डोर में बाँधकर रखती है, जो प्रेम होता है। नारी हृदय में पूरी सृष्टि को देनेयोग्य प्यार समाया होता है। नारी ही प्रेम की वीणा के हर तार को झंकृत करने की क्षमता रखती है, जिसका संगीत जीवनामृत बनकर इक नयी जिंदगी की कल्पना को साकार करता है। नारीत्व कभी नारी की विवशता नहीं है, वो तो ममत्व की पहचान है और प्रेम की आसक्ति है। नारी इकलौती सृष्टि की सृजनदायिनी है, उसके अस्तित्व को नकारना खुद के अस्तित्व को नकारने जैसा है। नारी ही प्रेम है और प्रेम ही

नारी के ममत्व का स्वरूप।

छलपूर्ण प्रेम स्वार्थ सिद्धि के लिए होता है और विश्वास पूर्ण प्रेम स्वार्थ को तिरोहित करता है। नारी का शोषण, समर्पण और भाव जगत तथा पुरुष समाज में उसका चारित्रिक मूल्यांकन उसके प्रेम को सीमित नहीं कर सकता। कठोरता के साथ कोमलता का सामंजस्य ही जीवन को जीने के लायक बनाता है। अपनी जिम्मेदारियों के प्रति ईमानदारी नारी की पहचान ही नारी शुद्ध प्रकृति ही है। कोमल कल्पनाओं के साथ ही नारी प्रेरणा है, जीने का सहारा, सृजन का बहाना है। प्रेम और शांत जिसके हाथ में है, वही नारी है। नारी प्रेम है, आस्था है, विश्वास, आस, प्यार है।

नारी प्रेम है, प्रेमजड़ित है, प्रेम से अलंकृत है। स्त्री ही पुरुष का परिचय है। स्त्री ही पुरुष को पूर्ण करती है, पूरक है। स्त्री ही पुरुष को पथभ्रष्ट करती है और स्त्री ही पुरुष को श्रेष्ठ मार्ग पर चलना सिखाती है। सृष्टि में प्रेम है तो प्रकृति है और प्रकृति से नारी। नारी के सम्मान से ही मिलती है कुल को मान– प्रतिष्ठा। प्रेम अपने में ही पर्याप्त आश्वासन और सुरक्षा होता है। प्रेम केवल एक संबंध नहीं है। प्रेम से ही अस्तित्व बनता है। स्त्री और पुरुष का प्रेम पूर्णता पर निर्भर करता है कि समर्पण के मामले में कितने पूर्ण हैं।

कामवासना अंश है प्रेम का, अधिक बड़ी संपूर्णता का। प्रेम उसे सौंदर्य देता है। अन्यथा यह तो सबसे अधिक असुंदर क्रियाओं में से एक है। इसलिए लोग अंधकार में कामवासना की ओर बढ़ते हैं। सभी पशु दिन में ऐसा करते हैं, केवल आदमी ऐसा करता है रात्रि में। एक तरह का भय होता है कि सेक्स क्रिया जोड़ी असुंदर है। और कोई स्त्री अपनी खुली आँखों सहित सेक्स नहीं करती है; क्योंकि उनमें पुरुष की अपेक्षा ज्यादा सुरुचि–संवेदना होती है, जिससे कोई चीज दिखाई नहीं देती। स्त्रियाँ अश्लील नहीं होतीं, केवल पुरुष होते हैं ऐसा।

प्रेम स्वयं में पर्याप्त होता है। प्रेम गहन हो तो वासना गिर जाती है। अंग्रेजी का शब्द सेक्स आता ही उस मूल से है, जिसका अर्थ होता है–विभेद। प्रेम जोड़ता है, सेक्स भेद बनाती है। इसलिए हर सेक्स के बाद एक हताशा, निराशा का जन्म होता है। प्रेम जब ज्यादा गहरे में उतर जाता है, तो और ज्यादा जोर देता है, वासना की जरूरत नहीं रहती। लोग तो कामवासना पर समाप्त हो जाते हैं।

प्रेम इस संपूर्ण अस्तित्व की सबसे बड़ी चीज है। हर चीज दूसरी चीज के प्रेम में होती है। सारा अस्तित्व प्रेममय है। सेक्स मदद करता है दूसरी देह को समझने में, दूसरे के द्वारा अपने शरीर की पहचान और अनुभूति पाने में। सेक्स हमें देहधारी बनाती है। शरीर में बद्धमूल करती है और प्रेम स्वयं का, आत्मा का अनुभव देता है। जब हम किसी स्त्री या पुरुष से प्रेम करते हैं तो परिचित हो जाते हैं अपनी देह के साथ। स्त्री–पुरुष के लिए प्रेम के परिणाम अलग–अलग होते हैं। स्त्री प्रेम में धोखा खाने के बाद भी अपने प्रेमी से प्रेम करती है; क्योंकि नारी में लेने का नहीं, देने का भाव होता है। प्रेम नारी का जीवन ही स्त्री धर्म है। जीवन की पूर्णता स्त्री ही है; क्योंकि उसी से घर है, संस्कार है, परिवार है। अगर आपके जीवन में स्त्री नहीं तो सब नीरस है, कोई रंग नहीं मिलेगा, जीवन स्त्री के बिना अधूरा है।

आज के नारी–विमर्श के दौर में मसीहा नारी की यौन शुचिता को नष्ट करने तथा शरीर के मुक्त उपभोग में ही नारी मुक्ति का दिवास्वप्न देख रहे हैं। भू–मंडलीकरण के प्रभाव में नारी एक वस्तु बन गई है और उसका शरीर केन्द्र में आ गया है। वह स्वयं नग्न–प्रदर्शन तथा यौन व्यवहारों का स्वेच्छा से अंग बन रही है और नारी को भोग्या बनानेवाले पुरुषों ने तो उसकी यौन शुचिता का मजाक उड़ाते हुए इस परंपरागत मूर्खता से मुक्त करने का जैसे आंदोलन ही शुरू कर दिया है। नारी को इस प्रकार यौन शुचिता की जड़ता तथा यौन पवित्रता की मूर्खता से मुक्त करने के मूल में विवाह तथा घर–परिवार की परंपरागत संस्थाओं को भी तोड़ने का षड़यंत्र चल रहा है। भारतीय नारी जबतक एक पुरुष के प्रति निष्ठावान है तथा घर–परिवार की रचना में मग्न है, तबतक यौन मुक्ति संभव नहीं है। इसी कारण पश्चिमी देशों में विवाह संस्था नष्ट हो रही है और घर–परिवार का स्वरूप भी एकदम बदल रहा है। नर–नारी की परस्पर पूरकता, समर्पण और विश्वास नष्ट हो रहा है तथा समाज तलाक, यौन अपराधों, समलैंगिकता तथा एड्स जैसी जानलेवा बीमारियों के जाल में फँसता जा रहा है।

सतीत्व नारी के जीवन की केन्द्रीय भावना है। पत्नी एक वृत्त का केन्द्र है, जिसका स्थायित्व उसके सतीत्व पर निर्भर है। नारी के आदर्श में त्याग और सेवा के साथ पवित्रता भी उसका अंग है। पवित्रता सतीत्व और यौन पवित्रता की ही पर्याय है। नारी की यौन शुचिता पर कोई ठोस या समझौता नहीं किया जा सकता।

पुरुष जितना प्रेम शब्दों में प्रकट करेगा, उससे कई गुना ज्यादा स्त्री मौन में प्रकट कर देती है। प्रेम में दूसरे महत्वपूर्ण होते हैं, वासना में आप महत्वपूर्ण होते हैं। स्त्री का शरीर बोध बहुत प्रगाढ़ है। पुरुष का मन के साथ लगाव है। पुरुष के लिए प्रेम बंधन है, स्त्री के लिए प्रेम मुक्ति है। स्त्री के लिए प्रेम बंधन नहीं होता, क्योंकि स्त्री पूरी ही झुक जाती है। समर्पण उसका स्वभाव है। कोई अहंकार पीछे नहीं बचता तो बंधेगा कौन? प्रेम जब भी होता है, पूरा ही होता है, आधा–अधूरा होना प्रेम का स्वभाव नहीं है। प्रेम तो बाढ़ है। प्रेम तो कोई हिसाब–किताब नहीं रखता। वहाँ कोई गणित नहीं है। अच्छा है पुरुष और स्त्री विपरीत हैं, अन्यथा संसार में सब रस खो जायें।

प्रेम की व्याख्या है– जो प्रसन्नता प्रदान करे। प्रेम में संतुष्टि का भाव निहित है और यही संतुष्टि प्रेम की प्रेरक शक्ति है, इस चरम तृप्तिप्रद प्रेम भावना का मूल स्थान आत्मा में है; क्योंकि आत्मिक प्रेरणा के अभाव में कोई भी इन्द्रिय–व्यापार आनंददायक नहीं हो सकता। प्रेम निर्गुण तथा कामनाहीन होता है, निरंतर बढ़ता रहता है, अत्यन्त सूक्ष्म होता है और अनुभव से ही जाना जा सकता है। मन, विचार से सम्बद्ध धन–वैभव, शोभा शृंगार और स्त्री को प्रेम के अंतर्गत माना गया है। पुरुष–नारी का परस्पर एक दूसरे पर अनासक्त होना दुष्कर है, उनके स्वाभाविक आकर्षण को प्रेम की संज्ञा दी गई है। मन के सहयोग बिना इन्द्रियाँ कोई भी कार्य नहीं कर सकतीं।

प्रेमरहित जीवन पल्लवहीन ठूँठ या सूखी नदी के समान है, जिसमें न गति है, न स्पंदन। प्रेम के बिना जीवन निरर्थक है, क्योंकि प्रेम से ही जीवन में गति और जीवंतता आती है और जैविक यत्न प्रारंभ होते हैं। प्रेमभाव को प्रारंभ होने के क्षण में तो रूपाकर्षण की अपेक्षा तो होती है, लेकिन सुस्थापित हो जाने के बाद प्रेम को शारीरिक सौंदर्य की आवश्यकता नहीं रहती। यही प्रेम पुरुष और नारी में स्थूल भाव को प्राप्त होकर संसार में रज–वीर्य रूप में उत्पन्न होता है, जिससे सृष्टिचक्र चलता है। यही प्रेम के माध्यम से प्रकृति की पूर्णता है।

मानवता के कल्याणार्थ तीन तत्व आवश्यक हैं–प्रेम, आशा और विश्वास। प्रेम इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। प्रेम को हृदय से ही महसूस किया जा सकता है, विचार से नहीं। यह प्रेम अज्ञात कारणों से होता है। पुरुष या नारी हर समय क्रोध, उत्साह शोक की अवस्था में नहीं रह सकता, पर वह प्रेम भाव की अवस्था में अधिक समय तक रह सकता है। सृजन, ममत्व और

प्रेम की प्रतिमूर्ति नारी आधार है–परिवार, समाज और राष्ट्र की।

स्त्री के जीवन में प्यार बहुत मायने रखता है। प्यार उसकी साँसों में फूलों की खुशबू की तरह रचा–बसा होता है, जिसे वह ताउम्र भूल नहीं पाती। स्त्री के प्रेम में जितनी सच्चाई और निष्ठा है, उतनी पुरुषों में नहीं। प्यार में हर स्त्री चाहती है कि पुरुष उसकी भावनाओं को समझें और उनका सम्मान करें।

जब पुरुष किसी स्त्री को प्रेम करता है तो उसका प्रेम भी बौद्धिक होता है। वह उसे भी सोचता–विचारता है। उसके प्रेम में गणित होता है। स्त्री जब किसी को प्रेम करती है, तो वह प्रेम बिल्कुल अंधा होता। उसमें गणित बिल्कुल नहीं होता, हृदय का भाव साहित्य होता है। इसलिए स्त्री–पुरुष के प्रेम में फर्क पाया जाता है। पुरुष का प्रेम आज होगा, कल खो सकता है। स्त्री का प्रेम होना मुश्किल है और इसलिए स्त्री–पुरुष के बीच कभी तालमेल नहीं बैठ पाता। क्योंकि आज लगता है प्रेम करने जैसा, कल बुद्धि को लग सकता है न करने जैसा। और आज जो कारण थे, कल नहीं रह जायेंगे। कारण रोज बदल जायेंगे। आज वो स्त्री सुंदर मालूम पड़ती थी, इसलिए प्रेम मालूम पड़ता था, कल निरंतर परिचय के बाद वह सुंदर नहीं मालूम पड़ेगी; क्योंकि सभी तरह का परिचय सौंदर्य को कम कर देता है। अपरिचित में एक आकर्षण है। लेकिन स्त्री कल भी इतना ही प्रेम करेगी, क्योंकि उसके प्रेम में कोई कारण न था। वह उसके पूरे अस्तित्व की पुकार थी। इसलिए स्त्री बहुत फिक्र नहीं करती कि पुरुष सुंदर है या नहीं।

पुरुष का कोई और अस्तित्वगत आकर्षण नहीं है। स्त्री का प्रेम भी इंट्यूटिव है, इटलेक्चुअल नहीं। इसके साथ ही उसका प्रेम पूरा है। उसके पूरे शरीर से उसका प्रेम जन्मता है, लेकिन पुरुष का प्रेम जेनिटल है। इसलिए जैसे ही पुरुष किसी स्त्री को प्रेम करता है, प्रेम बहुत जल्दी कामवासना की माँग शुरू कर देता है। स्त्री वर्षों प्रेम कर सकती है बिना कामवासना की माँग किये।

सच तो यह है कि जब स्त्री बहुत गहरा प्रेम करती है, तो उस बीच पुरुष की कामवासना की माँग उसको धक्का ही देती है। स्त्री को जहाँ प्रेम का आकर्षण होता है, वहाँ पुरुष को सिर्फ काम का आकर्षण होता है और पुरुष को जैसे ही काम की तृप्ति हुई, वह स्त्री को भूल जाता है। स्त्री को निरंतर यह अनुभव होता है कि उसका उपयोग किया गया है, शी दज बीन यूज्ड, प्रेम नहीं किया गया। उपयोग के बाद स्त्री व्यर्थ मालूम पड़ती है। लेकिन स्त्री का प्रेम गहन है, वह पूरे शरीर से है, रोयें–रोयें से है। स्त्री का प्रेम जेनिटल नहीं है, वह टोटल है।

स्त्री आक्रामक नहीं होती, उकसाती है मात्र, बुलाती है इशारों में, मौन में, सब तरफ से घेर लेती है; लेकिन पता नहीं चलता, उसकी जंजीरें बड़ी सूक्ष्म है, उसका कहीं बंधन दिखाई भी नहीं पड़ता। स्त्री कभी नहीं कहती सीधा कि यह करो, लेकिन जो चाहती है, करवा लेती है। कभी नहीं कहती कि यह ऐसा ही हो, लेकिन जैसा चाहती है, वैसा करवा लेती है। पुरुष सम्बद्ध होते हैं, स्त्री इसे संबंध बना लेती है। प्रेम की पुलक और है। प्रेम की प्रार्थना और है। प्रेम की सुगंध और है। प्रेम का संगीत और है। साथ रहना भर प्रेम नहीं है, प्रेम का सरासर धोखा है।

जबतक स्त्री को उसका प्रेम न मिल जाए, तबतक वह पत्थर ही होती है; क्योंकि स्त्री ग्राहक अस्तित्व है, उसका चित्त गर्भ की भाँति है, प्रतीक्षा की भाँति है। प्रेम निवेदन लेती है, करती नहीं। उसकी पहल प्रतीक्षा बनती है। मार्ग देखती है। उसका हाँ भी न की शकल लेकर आता है। उसका सारा गेस्चर कहेगा, सारा व्यक्तित्व कहेगा हाँ, लेकिन उसकी वाणी कहेगी ना। एक तो स्त्री निवेदन करती नहीं, लेकिन यदि कभी स्त्री निवेदन करे तो पुरुष का इनकार अनैतिक है। क्योंकि यह सामान्य घटनेवाला नियम नहीं है, ऐसा होता नहीं है।

स्त्री में पुरुष से अधिक अंतर्बोध होता है। उसके पास तर्क नहीं होता, अंतर्प्रज्ञा होती है। स्त्री अपनी अनुभूतियों से जीती है। कोई स्त्री किसी पुरुष के पीछे नहीं भागती। स्त्री अनाक्रामक होती है,ग्रहणशील होती है, स्वागत करती है, अंगीकार करती है– चुपचाप, मौन में, इशारों में। स्त्री का आकर्षण उसी मात्रा में ज्यादा होगा, जिस मात्रा में उनका पाना कठिन हो, असंभव से प्रेम कभी मरता नहीं। संभव से प्रेम मर जाता है। जो मिला, उसमें आकर्षण समाप्त हुआ। जो न मिले, उसमें ही आकर्षण होता है।

स्त्री जन्म–जन्म तक अपने प्रेमी की प्रतीक्षा कर सकती है, पुरुष नहीं कर सकता। वह आतुर है, व्यग्र है, तनावग्रस्त है, उसे अभी ही चाहिए। प्रतीक्षा में स्त्री का स्त्रैण तत्व ज्यादा प्रकट होगा। उसे जितना अवसर मिले निष्क्रिय प्रतीक्षा का, उसके भीतर की गहराइयाँ उनकी ही गहन और गहरी हो जाती है और उसके आंतरिक रहस्य मधुरत्व सुगंधित हो जाते हैं। स्त्री के कुँवारेपन से फर्क पड़ता है। कुँवारी स्त्री में एक सौंदर्य है, जो विवाह के बाद उसमें खो जाता है।

कोई भी पुरुष सीधा स्त्री की ओर आकर्षित होगा। प्रथम उसका काम केन्द्र होगा। स्त्री में सीधा प्रेम उठता है, क्योंकि उसका मूल ऊर्जाकेन्द्र हृदय स्थित है। लेकिन पुरुष में सीधा प्रेम नहीं उठता है। स्त्री की माँग सदा प्रेम की होती है। गहरे अर्थों में स्त्री काम नहीं चाहती। जब तक पुरुष से स्त्री को प्रेम नहीं मिलता है, वहाँ तक स्त्री को पुरुष के साथ काम में रस रहता है। जब स्त्री को पुरुष से प्रेम मिलना आरंभ हो जाता है, तब स्त्री भी पुरुष से काम नहीं चाहती है।

प्रेम एक बहुत गहरी समझ है कि कोई और किसी तरह तुम्हें पूरा करता है, कोई तुमको एक पूरा वर्तुल बनाता है। किसी अन्य की उपस्थिति तुम्हारी उपस्थिति को बढ़ाती है। प्रेम स्वयं होने की स्वतंत्रता देता है, यह स्वामित्व नहीं है। जब भीतर कुछ खिलना शुरू होता है तो तुम प्रेम में हो। प्रेम शुरुआत जानता है, लेकिन अंत नहीं जानता है। यदि वह है, तो यह बढ़ता चला जाता है, बढ़ता ही चला जाता है, कभी कम नहीं होता, कभी घटता नहीं। बस, प्रेम को माँगो मत, सिर्फ दो। सच्चा प्रेम तब होता है, जब उसमें कोई वजह नहीं होती।

स्त्री और पुरुष जितने विपरीत हैं, उतना ही सुखद है। जितना उनके बीच फासला है, जितनी दोनों के बीच दूरी हो और दोनों जितने एक दूसरे से भिन्न हों, उतना ही उनके बीच संबंध की गरिमा निर्मित होगी, संबंध के शिखर बनेंगे। पश्चिम में स्त्री– पुरुष का पास लाने की चेष्टा की गयी है, प्रेम वहाँ समाप्त हुआ जा रहा है; क्योंकि स्त्री–पुरुष करीब–करीब समान मालूम होने लगे हैं। स्त्री–पुरुष समान होने चाहिए न्याय की दृष्टि में, समान नहीं होना चाहिए स्वभाव की दृष्टि से। बड़े असमान है, बड़े भिन्न हैं। असमान का यह अर्थ नहीं है कि स्त्री पुरुष से नीची है या पुरुष स्त्री से ऊँचा है। असमान का अर्थ है कि दोनों बड़े भिन्न हैं जैसे रात और दिन, रोशनी और अँधेरा। इतना ही फासला है। कानून उनको समान माने, लेकिन मनोविज्ञान उन्हें समान नहीं कह सकता और अगर समान बनाने की चेष्टा की गयी तो जितने स्त्री–पुरुष समान होते जायेंगे, उतना ही स्त्री पुरुष जैसी हो जाएगी, पुरुष स्त्री जैसा हो जाएगा और उन दोनों के बीच का आकर्षण ही खो जाएगा। उन दोनों के बीच जो एक मधुर तनाव है–प्रेम भी है और संघर्ष भी है, समस्त भी है और विरोध भी है, कभी फूल भी खिलते हैं, कभी काँटे भी चुभ

जाते हैं, पास भी आते हैं, दूर भी हटते हैं, निमंत्रण भी है, अस्वीकार भी है–उन दोनों के बीच जो यह बड़ा खेल चलता है जीवन का, यह जो सारी लीला है जीवन की, वह मधुर है। वह शुभ है, सुंदर है।

स्त्री समर्पण करने में कुशल है, हारकर जीतती है। उसके जीतने का ढंग वही है। वह अपने को खो देती है और पुरुष के रोएँ–रोएँ में समा जाती है। स्त्री अंतर्मुखी है। पुरुष और स्त्री जब एक दूसरे को प्रेम भी कर रहे हैं, तो पुरुष आँख खोलकर प्रेम करता है, स्त्री आँख बंद करके। उसकी यात्रा अलग है। जब भी स्त्री भाव में होती है, आँख बंद कर लेती है; क्योंकि जब भी भाव में होती है, अंतर्मुखी हो जाती है। वह प्रेम भी जिससे करती है, उसको भी जब ठीक से देखना चाहती है तो आँख बंद कर लेती है। यही स्त्री का ढंग है। क्योंकि ऐसे आँख बंद करके ही वह उस चिन्मय को देख पाती है, आँख खोलकर तो मृण्मय दिखाई पड़ता है और स्त्री जब भी किसी को प्रेम करती है, तो परमात्मा से कम नहीं मानती। आँख बंद करके परमात्मा दिखाई पड़ता है। आँख खोलो तो मिट्टी की देह है।

लेकिन पुरुष का रस भीतर में कम है, बाहर में ज्यादा है। पुरुष आँख खोलकर प्रेम करना चाहता है। प्रेम के क्षण में भी चाहता है कि रोशनी हो, ताकि वह स्त्री की देह को ठीक से देख सके; क्योंकि पुरुष कर रस देह, रूप, रंग में है, बाहर में है। स्त्री को शरीर के पार देखने की सुविधा है। उनके पास एक झरोखा है, जहाँ से वह देह को भूल जाती है और परमात्मा को देख लेती है। उसे प्रेम में परमात्मा की झलक दिखाई देने लगती है।

वही पुरुष स्त्री के प्रेम के लिए राजी हो सकता है, जो अहंकार को छोड़ने को तैयार हो। दोनों के मन अलग हैं। जो निकट और पास है, स्त्री की उसी में आसक्ति है। दूर जाने में उसकी आकांक्षा नहीं है। यहीं डूब जाना है। स्त्री के लिए वही राह है–बेहोशी की, खोने की, लीन हो जाने की, तल्लीन हो जाने की, अपने को इस तरह मिटा देने की कि कोई भीतर बचे ही न। जिससे प्रेम किया है, वही बचे रहे। प्रेमी बचे, प्रेयसी खो जाए। तब जो रह जाता है, वही प्रेम है।

नारी होने का ठीक अर्थ पुरुष से बहुत भिन्न है। पुरुष एक्टिव है, पुरुष का सारा व्यक्तित्व क्रियात्मक है, विधायक है। स्त्री का सारा व्यक्तित्व पैसिव है, निषेधात्मक है। स्त्री कितना ही प्रेम करती हो तो भी वह प्रतीक्षा करती है कि पुरुष निवेदन करे, प्रतीक्षा कर सकती है, पहल नहीं करेगी, आक्रमण नहीं करेगी। पुरुष को ही पहल करनी होगी, पुरुष को ही पहला कदम उठाना होगा। स्त्री इंतजार करेगी। मौन प्रतीक्षा, अनाक्रामक। अगर कोई पुरुष प्रतीक्षा करे तो कोई स्त्री उसे पसंद नहीं करेगी, कभी प्रेम नहीं कर पाएगी। इसलिए कोई स्त्री ऐसे पुरुष को प्रेम नहीं कर पाती जो उसके पीछे छाया बनकर चले; क्योंकि उसमें एक स्त्री ही दिखाई पड़ेगी।

पैसिविटी, निष्क्रियता शक्तिहीन नहीं है। पुरुष की जीत प्राथमिक हो सकती है, अंतिम जीत स्त्री की हो जाती है। पत्थर एक्टिव है, पानी पैसिव है–वह फौरन गड्ढा बन जाता है, लेकिन पत्थर नीचे गया कि पानी फिर अपनी जगह पर वापस लौट आता है। जितना दुर्लभ हो व्यक्ति उतना ही आकर्षक हो जाता है। स्त्री अगर पुरुष से भागे, तो वह बचती है; क्योंकि पुरुष उसका पीछा करता है। स्त्री अगर पुरुष के पीछे चलने लगे, तो पुरुष उससे भागने लगता है। एक हमेशा पीछा करेगा और एक हमेशा भागता हुआ रहेगा। ऐसे आकर्षकण कायम रहता है। जो मिल जाए, उसमें आकर्षण समाप्त हो जाता है। जो ना मिले, तो आकर्षण बना रहता है। स्त्री का आकर्षण उसी अनुपात में रहता है, जिस मात्रा में उसका पाना कठिन हो।

स्त्री प्रमुख है, पुरुष गौण है। सभी बच्चे माँ के पेट में प्राथमिक रूप से स्त्रैण होते हैं, सभी बच्चे स्त्री की तरह यात्रा शुरू करते हैं। पुरुष भी स्त्री से ही जन्मता है। इसलिए गौण ही होगा, प्रमुख नहीं हो सकता। वह भी स्त्री का ही फैलाव है, स्त्री की ही यात्रा है। पुरुष में एक तरह की तनाव स्थिति है, स्त्री में वैसी तनाव स्थिति नहीं है। स्त्री संतुलित है, प्रत्येक जीवाणु में चौबीस कोष्ठ होते हैं। यदि चौबीस–चौबीस कोष्ठ के दो जीवाणु मिलते हैं, तो स्त्री का जन्म होता है। अगर तेईस और चौबीस ऐसे दो जीवाणुवाले कोष्ठ का मिलन होता है, तो पुरुष का जन्म होता है। पुरुष में संतुलन स्त्री की तुलना में कम है। एक तरफ चौबीस कोष्ठ है, दूसरी तरफ तेईस कोष्ठ है। स्त्री संतुलित है। दोनों कोष्ठ चौबीस–चौबीस हैं। जीव वैज्ञानिक मानते हैं स्त्री के सौंदर्य का कारण यही संतुलन है। यही कारण है कि स्त्री का धैर्य, सहनशीलता एवं उम्र पुरुष से ज्यादा है। पुरुष में वह जो तेईस–चौबीस का असंतुलन है, जो तनाव है, वही उसकी बेचैनी का कारण है। पुरुष ही शांति की खोज में है, स्त्री को कोई खोज नहीं है। वह स्वभाव से ही शांत है। पुरुष में आंतरिक असंतुलन है और स्त्री में एक आंतरिक संतुलन है।

स्त्री की उत्सुकता निकट में होती है, दूर में नहीं। एक संतुलित, शांत, प्रेमपूर्ण जीवन में होती है–अभी और यहीं। स्त्री दूर दृष्टि की नहीं, उनको बहुत पास का दिखाई देता है, दूर व्यर्थ हो जाता है। जितना पुरुष मिला हुआ है, जितना उसे अपना मालूम पड़े, जितनी दूरी कम हो गयी हो, उतनी ही वह ज्यादा लीन हो सकेगी। स्त्री इसलिए पत्नी होने में उत्सुक होती है, प्रेयसी होने में नहीं। संतुलन प्रकृति का स्वभाव है और स्त्री को प्रकृति कहा गया है।

पुरुष के पास जो जननयंत्र है, वह भी आक्रामक है और स्त्री के पास जो जननयंत्र है, वह भी ग्राहक है। स्त्री केवल स्वीकार करती है और वह पता लगाना मुश्किल है कि उसकी स्वीकृति में उसका प्रेम था या नहीं था। क्योंकि स्त्री के प्रेम की प्रक्रिया भी पैसिव है। स्त्री का प्रेम केवल समर्पण है, पुरुष का आक्रमण है, स्त्री का सहयोग भी पैसिव, सिर्फ एक आमंत्रण। लेकिन प्रेम सक्रिय नहीं, सिर्फ स्वीकार। इसलिए पता लगाना आसान नहीं। पुरुष का प्रेम तत्काल पता चल सकता है, क्योंकि सक्रियता में प्रकट होता है।

जो तत्व जितना निष्क्रिय होगा, उतना शांत होगा, मौन होगा, गहन–गहरा होगा। जो तत्व जितना सक्रिय होगा, उतनी सतह पर होगा, उथला होगा। लहरें सतह पर होती है, गहराई में तो मौन होगा। स्त्री केन्द्र पर है, पुरुष परिधि पर। स्त्री अगर पुरुष जैसी होने की कोशिश करे तो इस जगत में जो भी मूल्यवान है, जो सारभूत है, वह सब खो जाएगा। सब उथला हो जाएगा। स्त्री के लिए दौड़ उसकी प्रकृति के प्रतिकूल होगी। कोई भी चीज सदा सक्रिय नहीं रह सकती, क्योंकि सक्रियता में शक्ति व्यय होती है। शक्ति व्यय होती है, तो फिर निष्क्रिय हो जाता है।

स्त्री ज्यादा निष्क्रिय है। पुरुष ज्यादा सक्रिय है। स्त्री मूल में है। अप्रयास से जो मिल जाए, वही परम शांति है। स्त्री की शरीर रचना घाटी की तरह है, पुरुष की शिखर की तरह। घाटी शांत है, शिखर सदा अशांत। मूल सदा अखंड, गौण सदा खंडित। इसलिए स्त्री–पुरुष में इतना आकर्षण है। यौन तो आसान है, प्रेम बहुत कठिन है। प्रेम का मापदंड बहुत बड़ा है, जिसकी वजह से शीघ्र तृप्ति नहीं हो पाती।

स्त्री का प्रेम प्रारंभ में बिल्कुल नहीं रहता, विवाह के बाद धीरे–धीरे बढ़ता है। जब एक बार प्रेमी प्राप्त कर लेती है, तो स्वभावतः उसे छोड़ना नहीं चाहती, केवल उसी से प्रेम करती है। वह भिन्न–भिन्न भावनाओं का एक

आश्चर्य सम्मिश्रण है। स्त्री स्वाभाविक असत्य बहुत कम बोलती है। अपने गुप्त भेद को छिपाने में बड़ी कुशल होती है। स्त्री पुरुष के प्रेम का प्रमाण चाहती है, पग–पग पर रुकती है, सोचती है, तब अपना हृदय देती है। वह अपने प्रेमी के प्रेम का सबूत दिन में कई बार उसके मुख से, वाणी एवं नेत्रों से चाहती है। स्त्री जीवन प्रेम पर ही अवलंबित है। स्त्री सर्वस्व दान दे सकती है। सच में स्त्री कल्पलता है।

अपने पुरुषोचित गुणों, बल, वीर्य, पराक्रम, साहस को बढ़ाकर स्त्री को जीता जा सकता है। कोमल, पतले, दुबले, कमजोर, स्त्रैण पुरुष स्त्री को अच्छे नहीं लगते। प्रेम में पुरुष शिकारी है, स्त्री शिकार। स्त्री दास, दब्बू, कायर, साहसहीन पुरुष को पसंद नहीं करती। वस्त्रों व वेश पर, सौंदर्य पर ध्यान देती है। स्त्री की खूबियों का बयान करना, आदर करना, उत्तम कार्यों की सराहना करना, इन सबके लिए व्यर्थ की मिथ्या प्रशंसा करना और बार–बार यह दर्शाना कि आप उससे प्रेम करते हैं, एक बार नहीं, वह बार–बार आपके मुख से अपने प्रति प्रेम सुनना पसंद करती है। स्त्री सदा वीर पुरुष को प्यार करती है। प्रेमिका की देखभाल माँ की भाँति रखनी होती है। पुरुष चाहे जितना बड़ा क्यों न हो जाए, वह स्त्री के सामने तो शिशु ही है।

प्रेम तो उसका अनुभव है, जिनकी आँख से वासना गिर गई, जिन्हें सौंदर्य दिखाई पड़ा, जिसे सब तरफ से उसके नृत्य का अनुभव हुआ। फिर प्रेम का आविर्भाव होता है। प्रेम यानी प्रार्थना। प्रेम यानी पूजा। प्रेम यानी अहोभाव, धन्यता, कृतज्ञता है।

स्त्री निगेटिव ऊर्जा है और पुरुष पॉजिटिव ऊर्जा है। जैसे चुंबक का साउथ पोल नार्थ पोल को आकर्षित करता है, वैसे ही स्त्री पुरुष को आकर्षित करती है। बिजली जलानी है तो दोनों का बराबर ही इस्तेमाल करना होगा। पुरुष हमेशा से निगेटिव की तलाश में रहता है और स्त्री हमेशा पॉजिटिव की। (पॉजिटिव मिट्स निगेटिव) सकारात्मक से नकारात्मक मिलता है। एक यात्री है, एक मंजिल। जब यात्री मंजिल को पा लेता है, तब दोनों को शांति मिलती है।

पुरुष काम में और स्त्री के काम में बहुत अंतर है। पुरुष का काम है–प्रवेश करना और स्त्री का काम है प्रेवश करवाना यानी लेना। पॉजिटिव एनर्जी आपको खींचती है और निगेटिव वाय से आपको खींच लेती है। प्रेम में समर्पण करती है, पुरुष अधिकार जताते हैं। स्त्री पहले तो किसी से प्रेम करती ही नहीं, लेकिन जब करती है, अपना सब कुछ निछावर कर देती है। स्त्री और पुरुष के प्रेम में बड़ा अंतर होता है,एक दूसरे के विपरीत है। पुरुष का प्रेम गति का प्रतीक होता है, चंचलता का प्रतीक, स्त्री का प्रेम स्थिरता का प्रतीक। वह प्रेम के सागर में बहुत सोच–समझ कर धीरे से उतरती है। स्त्री जल्दी बेकरार नहीं होती, चीजें समझने के लिए खुद को समय देती हैं। संयम से काम लेती है।

पुरुष का प्रेम चंचल होता है, जल्दी स्त्री के प्रेम से ऊब जाता है। जो स्त्री किसी पुरुष के प्रेम को एक बार स्वीकार करती है, तो हमेशा के लिए और संपूर्णता से उसको स्वीकार कर लेती है। स्त्री एक पुरुष के प्रेम में पड़ने के बाद उसे खोना नहीं चाहती, उससे अलग होना नहीं चाहती; क्योंकि उसके प्रेम का स्वभाव है ठहरना। स्त्री शुरू में किसी पुरुष के प्रेम को पाने के लिए कुछ भी नहीं करेगी। वह उस पुरुष के प्रेम का इंतजार करेगी, लेकिन एक बार किसी पुरुष के प्रेम उसके जीवन में आता है तो उसे संभाल के रखने के लिए स्त्री कुछ भी कर सकती है। अगर वह किसी पुरुष को अपना बनाती है, तो जीवनभर उससे प्रेम करती है।

प्रेम की शुरुआत पुरुष करता है, लेकिन उसका अंत स्त्री पर जाकर खत्म होता है। स्त्री का प्रथमतः स्वभाव है आकर्षक बनना और इन्कार कर देना। अपरिचित में आकर्षण है, क्योंकि उसके प्रेम में कोई कारण नहीं होता। स्त्री का प्रेम खोना बहुत मुश्किल है। स्त्री जब किसी से प्रेम करती है तो वह अपना सर्वस्व अर्पण करती है, अपने अस्तित्व को दाँव पर लगाकर अपने प्रेम को पाना चाहती है। वह 'मैं' से 'हम' की तरफ बढ़ती है। लेकिन जब एक पुरुष प्रेम करता है तो वह सिर्फ लेना चाहता है। देना उसके पास नहीं है। वह स्त्री के अस्तित्व का हरण कर लेता है।

स्त्री का प्यार शर्तहीन होता है, इसलिए उसके लिए यह एक विश्वास है। स्त्री केवल एक को ही अपनाती है। स्त्री प्रकृति के अधिक नजदीक होती है, इस कारण वह प्रेम भी निश्छल आवेग से अर्पित करती है। उसका प्रेम हृदय व भावना प्रधान होता है। स्त्री के लिए उसका प्रेमी पूरी दुनिया होता है।

कहा जाता है कि स्त्री और पुरुष दो अलग–अलग ग्रह से आये हैं। पुरुष मंगल ग्रह से ओर स्त्री शुक्र ग्रह से। स्त्री का मस्तिष्क अपेक्षाकृत ज्यादा संतुलित होता है, स्त्री अपने मस्तिष्क के दोनों हिस्सों का समान से प्रयोग करती है, जबकि पुरुष एक ही हिस्से से काम चला लेता है। स्त्री के मस्तिष्क की बुनावट में तंतु बायें से दायें और दायें से बायें दोनों ही रूप में एक दूसरे से जुड़ते हैं, जबकि पुरुष के मस्तिष्क की बुनावट आगे से पीछे की ओर जाती है। पुरुष के मस्तिष्क में तंत्रिका तंतु की संख्या अधिक होती है, जबकि स्त्री मस्तिष्क में न्यूट्रॉन की संख्या अधिक है। इसलिए अधिक भावुक न संवेदनशील होती है। इसी कारण स्त्री दिमाग की अपेक्षा दिल की अधिक सुनती है। याददाश्त स्त्री की ही अच्छी होती है। विश्लेषण करने में उनकी क्षमता ज्यादा होती है, इसलिए किसी का भी दिमाग पढ़ सकती है।

स्त्री–पुरुष की जननेन्द्रियाँ शरीर के अन्य समस्त अंगों की अपेक्षा अधिक चैतन्य, सजीव, कोमल, सूक्ष्म, प्राण तथा विद्युत से युक्त होती है। दोनों के शरीर के विद्युत परिमाण दोनों के अंदर अत्यन्त वेग और आवेश के साथ प्रवेश करते हैं और दोनों में एक शक्तिशाली अंतरंग संबंध–प्रेम उत्पन्न करते हैं। एक दूसरे के सूक्ष्म तत्वों का एक दूसरे में बड़ी तीव्रगति से प्रचुर मात्रा में आदान–प्रदान होता है। यही कारण है कि वे एक दूसरे के ऊपर आसक्त हो जाते हैं। उनके बीच एक ऐसा आकर्षण और सामंजस्य स्थापित हो जाता है, जिसे हटाना कठिन होता है। यौन संबंध से दो व्यक्तियों के सूक्ष्म प्राणतत्वों में आवेशपूर्ण आदान–प्रदान होता है।

एक पुरुष का एक स्त्री से संपर्क होने पर उन दोनों में प्रेम भाव बढ़ता है। एक ही शक्ति निश्चित मार्ग से दूसरे को प्राप्त होती है। गुण कर्म स्वभाव से एक–दूसरे के निकट आते हैं। एक प्राण दो शरीर बन जाते हैं। यौन संबंध के द्वारा दोनों के रक्त में सजीव सम्मिश्रण होता है। दोनों के रक्त में सहवास के कारण एक समान तत्व पैदा हो जाते हैं।

स्त्री पुरुष के बीच सच्चा प्रेम, वफादारी, सेवा, आत्मीयता, विश्वास तभी रह सकता है, जब एकनिष्ठा का व्रत हो। यदि कोई स्त्री अनेक पुरुषों से या कोई पुरुष अनेक स्त्रियों से यौन संबंध स्थापित करता है, तो उनके शरीर में, रक्त में, मन में, मस्तिष्क में अनेक तत्व मिल जाने के कारण अस्थिरता, खींचतान, बेचैनी, असंतुलन, विकर्षण, आकर्षण के दौर चलने लगते हैं। स्त्री–पुरुष के सम्मिलन से एक का प्रभाव दूसरे पर जाता है। व्यभिचार स्त्री के लिए विशेष रूप से घातक है। कारण स्त्री अपने शरीर के सबसे सूक्ष्म, चेतन एवं प्राणयुक्त स्थान गुह्येन्द्रिय में पुरुष का वीर्य ग्रहण करती है। वीर्य पानी की बूँद नहीं है। पुरुष के शरीर और मन का सारभूत प्राणतत्व है, उसकी

प्रत्येक बूँद में जीव उत्पन्न करने की प्रचंड शक्ति भरी है। इस द्रव प्राणतत्व को योनिमार्ग में धारण करना किसी के गुण–अवगुणों का सार भाग का इंजेक्शन लेना। पापी और पतित स्वभाव के व्यक्ति ही व्यभिचारी होते हैं। उनका पाप और पतन, प्राण सत्व वीर्य के साथ स्त्री के आत्मिक क्षेत्र में व्याप्त हो जाता है और उसमें भी यह दुर्गुण भर देता है। एक म्यान में अनेक तलवार ठूँसने से भयंकर स्थिति उत्पन्न होती है। एक स्त्री के शरीर में नाना प्रकार के गुण, कर्म, स्वभाव एवं प्रभाव प्रवेश कर जाते हैं, तो वे आपस में टकराते हैं, मनोभूमि को विकृत कर देते हैं। उनमें सीधा पन नहीं रह जाता। चिड़चिड़ापन, झुंझलाहट, घबराहट, आवेश, अस्थिरता, रूठना, असत्य, छल, अतृप्ति की मात्रा बढ़ जाती है। एक शरीर में अनेक पुरुषों के प्राण का स्थापित करना नारकीय है। कई प्रकार के वीर्यों का एक स्थान पर एकत्रित होने से विषैले रासायनिक पदार्थों का निर्माण होता है। अनेक पुरुषों के शुक्रकीट योनिमार्ग में एकत्रित होकर विष बन जाते हैं, इसलिए स्त्री का व्यभिचार सर्वथा निंदनीय है।

स्त्री और पुरुष के प्रेम में अंतर है। पुरुष के प्रेम का अर्थ प्राप्त करना है और स्त्री का प्रेम का अर्थ त्याग करना है। नारी पुरुष के सान्निध्य और प्रेमभाव से ही पुष्ट–तृप्त–प्रसन्न होती है और उसमें संपूर्ण नारीत्व का अहसास होता है। प्रेम के बगैर नारी में संपूर्ण खिलावट आ ही नहीं सकती। प्रेम के बिना नारी और नारी के बगैर प्रेम असंभव है। स्त्री के लिए प्रधान प्रेम है, सेक्स गौण है। प्रेम ऊर्ध्वमुखी है, सेक्स अधोमुखी है। सेक्स प्रेम मे दायरे में आता है, प्रेम सेक्स के दायरे में नहीं आता। स्त्री के लिए सेक्स का उद्देश्य केवल शारीरिक आनंदभर ही नहीं है। यह परस्पर प्रेम, निष्ठा, विश्वास, भावनात्मक लगाव, जीवनभर के साथ से जुड़ा है। इनके बिना केयर और शेयर समाप्त हो जाती है तथा सुख–दुःख में कोई किसी की परवाह और जिम्मेदारी नहीं लेगा। सेक्स को ध्यान में रखकर प्रेम किया जाए तो वह क्षुद्र कृत्य है, अनुचित है, अनैतिक है, अधर्म है, पाप है, धोखा है। प्रेम में सेक्स हो तो इसमें कोई बुराई नहीं। रस प्रेम में है, सेक्स में नहीं।

सेक्स के लिए स्त्री को प्रेम करने की जरूरत है, क्योंकि वह आपको अपना बनाने के लिए प्यार पाने के लिए ही सेक्स करती है। सचमुच स्त्री अंतरंगता चाहती है, यौन नहीं। पूरे जीवन का साझा, अंतरंगता। प्रेम एक संवेग से कहीं ज्यादा है।

प्रेम और सेक्स विरोधी चीजें हैं। जितना प्रेम बढ़ेगा, सेक्स क्षीण होगा और जितना प्रेम कम होगा, उतना सेक्स ज्यादा। परिपूर्ण प्रेम में सेक्स कहाँ?प्रेम नहीं है तो भीतर सब सेक्स है। सेक्स की शक्ति का परिवर्तन, उदात्तीकरण प्रेम में होता है। प्रेम सेक्स का क्रिएटिव उपयोग है। प्रेम करना और प्रेम चाहना अलग बातें हैं। प्रेम चाहा नहीं जा सकता, प्रेम केवल किया जाता है। दिया जाता है। सब प्रेम माँगते हैं, देना कोई नहीं जानता। जो मिलता है, वह प्रसाद है उसका। नहीं मिलेगा तो भी देनेवाला को आनंद होगा कि उसने दिया। जितना प्रेम देंगे, उतना ही सेक्स विलीन होता चला जाएगा।

पुरुष हमेशा से निगेटिव की तलाश में रहता है और स्त्री हमेशा पॉजिटिव की। प्रेम सेक्स को एक नयी आत्मा दे सकता है। प्रेम अधिक संपूर्ण है, जो सेक्स को सौंदर्य दे सकता है, मगर सेक्स में संपूर्णता है ही नहीं, इस कारण इससे प्रेम का जन्म हो नहीं सकता। जब प्रेम ज्यादा और ज्यादा गहरे में उतर जाता है, तो सेक्स का सौंदर्य लबालब हो जाता है।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के मूल में प्रेम ही है। नर–नारी यौन संबंधों के पीछे शारीरिक आकर्षण सुखानुभूति की चाह या अनुरक्तता हो सकती है। मगर नारी यौनोन्मुखता के पीछे प्रेम वह भावात्मक लगाव की भूमिका अहम है। नारी पुरुष से कहीं अधिक ऐसे मामलों में यौन संबंध की आकांक्षी हो सकती है, जहाँ मानसिक व भावात्मक जुड़ाव महसूस नहीं है। जबकि पुरुष प्रकृतिवश अवसर की ताक में रहता है। नारी छोटी अवधि के सांयोगिक संबंधों को लेकर खास तौर पर सतर्क और चूजी होती है।

प्रेमहीन सेक्स और सेक्सहीन प्रेम दोनों ही जीवन का अतिचार हैं। क्योंकि दोनों ओर ही प्राकृतिक संवेगों का निराधार हो जाता है। प्रेम का विकास आत्मीयता का आश्रय पाकर होता है। प्रेम समर्पण का प्रयोजन है। देने की भाषा है। नारी प्रेम के खत्म होने की भी पहचान रखती है। नारी रिश्ते को प्राथमिकता देती है। ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है नारी। नर–नारी के बीच उचित संबंध की सांस्कृतिक परंपरा है। विवाह के टिकने का आधार प्रेम है। प्रेम का मूलाधार काम है।

स्त्री को सेक्स का प्रलोभन देना ही मूर्खतापूर्ण कार्य है। पुरुष को सेक्स का लालच देकर कुछ भी कराया जा सकता है। स्त्री के लिए उसका पति ही सब कुछ है और पुरुष के लिए पत्नी केवल सेक्स पार्टनर। वासनात्मक प्रेम एक अयोग्यता है और पवित्र प्रेम उसकी बुनियाद। प्रेम की शुरुआत पुरुष करता है और उसे निभाती है नारी।

कविता

प्रिया देवांगन प्रियू
पंडरिया,छत्तीसगढ
7697282458

आया बसंत

आया बसन्त का राजा है, झूम उठे हरियाली।
पेड़ो पर बैठे हैं पंछी, चहके डाली डाली।।
मौर आ गए आमों पर, महक लगे सुहानी।
गीत गाते बच्चे सारे, दादी सुनाये कहानी।।

इतराती है तितली रानी, फूलों पर बैठ जाती।
बड़े मजे से अपनी धुन में, गीत मधुर है गाती।।
मौसम लगे बड़े सुहानी, जब बसन्त आ जाये।
खेले कूदे बच्चे सारे, पंछी भी चहचहाये।।

अंजनी कुमार सुमन
बाग नौलक्खा, सफियाबाद, मुंगेर
मो. 9709964609

ग़ज़ल

कई फेर चक्कर लगाती है रोटी
बहुत देश दुनिया दिखाती है रोटी
ये पूछो जरा आज भी मुफलिसों से
उसे रोज कितना रूलाती है रोटी
चुलाती है पहले ये गाढ़ा पसीना
तभी मुट्ठियों में समाती है रोटी
हमें छोड़ जाता है जो दूध माँ का
तो फिर जिन्दगी भर जिलाती है रोटी
कोई नाचता है सुमन शौक से कब
कलाकार को बस नचाती है रोटी।

समीक्षा

मेरी कहानियाँ : अनछुए पहलुओं की झलक

डॉ.अरुण कुमार वर्मा
व्याख्याता (हिन्दी) जवाहर नवोदय विद्यालय
पदमी, मंडला (म.प्र.)–48166
मो.09754128757

'मेरी कहानियाँ' संग्रह अरुण कुमार सिन्हा की मात्र एक कहानी 'बदलता जमाना' को छोड़ दिया जाय, तो सभी कहानियाँ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। सिन्हा जी ने इतिहास के गर्भ से ऐसी घटनाओं को जनमानस के समक्ष रखने का प्रयास किया है जो लोगों के बीच धुंधली आकृतियाँ हैं या लोगों की पहुँच से परे हैं। इस संग्रह के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सिन्हा जी की कथावस्तु का फलक बहुत ही विस्तीर्ण है। उन्होंने इतिहास के झरोखे से वर्तमान को समझने का सफल प्रयास किया है।

विवेच्य कहानी संग्रह की पहली कहानी 'पेशवा बाजी राव रूपकुंवर' के माध्यम से बाजीराव द्वितीय और मुस्लिम नर्तकी रूपकुंवर के प्रेम कहानी के साथ–साथ पानीपत के तीसरे युद्ध में बाजीराव द्वितीय की पराजय और पूर्ण हिन्दू राज्य की स्थापना का सपना और मराठा शक्ति के अंत को भी समाहित किए हुए है। इस कहानी में जहाँ एक ओर बाजीराव प्रथम और मस्तानी की प्रेम कहानी के साथ बाजीराव द्वितीय एवं रूपकुंवर के प्रेम की मार्मिकता के साथ ऐतिहासिकता को भी संजोकर रखा है। यह कहानी इतिहास के अनछुए पहलुओं के साथ मराठा शक्ति की कमजोरियों को दर्शाने का काम करती है। एक उदाहरण देखिए–''बालाजी बाजीराव द्वितीय और रूपकुंवर की प्रेम कहानी उसके पिता बाजीराव बल्लाल की प्रेम कहानी की जगमगाती रोशनियों में धुंधलाती हुई इतिहास के पन्नों में गुम हो जाती है, जिसका उल्लेख भारतीय इतिहास और साहित्य में तो क्या मराठी इतिहास और साहित्य में कम ही दृष्टिगोचर होती है।''

देवयानी कहानी के माध्यम से पौराणिक कथा के विषयवस्तु को लिया गया है। इस कहानी में शुक्राचार्य के जीवन के साथ ही साथ उनकी पुत्री देवयानी के जीवन की घटनाओं पर प्रकाश डाला गया है। शुक्राचार्य को बताया गया है कि वे देव जाति के थे। जब उनको इस जाति में सम्मान नहीं मिला, तो वे दानवों की ओर चले गए और उनके गुरु बन गए। मृतसंजीवनी की विद्या को जाननेवाले अकेले शुक्राचार्य ही थे। दानव इसी मंत्र से मरने के बाद भी जीवित हो जाते थे। देवताओं ने इस मंत्र को प्राप्त करने के लिए बृहस्पति के पुत्र 'कच' को भेजा। कच ने शुक्राचार्य का शिष्य बनकर संजीवनी मंत्र को प्राप्त किया। भोग–विलास को इस कहानी का भी आधार बनाया गया है। राजा 'ययाति' और देवयानी की शादी होती है। राजा ययाति फिर भी शर्मिष्ठा और दासी अंतरा के साथ रास लीला में मस्त रहते हैं। जब देवयानी को इस रहस्य का पता चलता है, तो वह बहुत क्रोधित होती है और अपने पिता शुक्राचार्य से सारी घटना बता देती है और शुक्राचार्य के कोप का भाजन राजा ययाति को होना पड़ता है। यह कहानी जहाँ एक ओर पौराणिक प्रेम प्रपंचों से अवगत कराती है, वहीं दूसरी ओर मानवीय मूल्यों को स्थापित करने में सफल होती है।

ऐतिहासिक कहानियों की शृंखला में 'ध्रुवदेवी' की कथावस्तु को लिया गया है। ध्रुवदेवी कामरूप के राजा चित्रसेन की पुत्री थी। इसी कथावस्तु को महान रंगकर्मी जयशंकर प्रसाद ने गुप्तकालीन कथावस्तु को 'ध्रुवस्वामिनी' नामक नाटक के माध्यम से उठाया है। यह नाटक स्त्री अधिकारों के साथ कापुरुष व्यक्ति को राजगद्दी न देने की बात करता है, भले ही वह सबसे बड़ी संतान हो। इसी कथावस्तु को आदरणीय सिन्हाजी ने ध्रुवदेवी कहानी के द्वारा चित्रित किया है। यह कहानी जहाँ एक ओर नारी सम्मान को लेकर आगे बढ़ती हैं वहीं दूसरी ओर कापुरुष और लंपटों के अमानवीय व्यवहार को नकारती भी है। इस कहानी में ध्रुवदेवी की अपनी बहन महिमा देवी के लिए किया गया त्याग अद्वितीय है। वह चंद्रगुप्त द्वितीय और महिमा देवी के लिए अपने प्रेम की कुर्बानी देकर स्वयं भगवान बुद्ध की शरण में चली जाती है, जो कि ध्रुवस्वामिनी नाटक से अलग घटना को दर्शाती है।''इसी बीच ध्रुवदेवी की तबियत कुछ खराब हो गई। यह समाचार सुनकर उसके पिता चित्रसेन ने उसकी छोटी बहन महिमा देवी को उसकी देखभाल के लिए ध्रुवदेवी के पास भेजा। वह ध्रुव देवी की बीमारी के समय उसकी देखभाल करने लगी। वह चंद्रगुप्त की हम उम्र थी। चंद्रगुप्त धीरे–धीरे उसकी ओर आकर्षित होने लगा। ध्रुवदेवी को इसका आभास हुआ। वह चंद्रगुप्त से बहुत प्रेम करती थी और शकराज से रक्षा करने के प्रतिदान में उसने चंद्रगुप्त के जीवन से हट जाने का विचार बना लिया, ताकि चंद्रगुप्त सुखी जीवन बिता सके उसकी छोटी बहन के साथ। इसी क्रम में उसे भगवान बुद्ध का प्रवचन सुनने को मिला और उसे सांसारिक सुखों से विरक्ति होने लगी।'' इस संग्रह की अधिकांश कहानियाँ प्रेम की भावभूमि पर आगे बढ़ती हैं। इतिहास भी इसका गवाह है कि लौकिक प्रेम की स्थापना ही कितने युद्धों को जन्म दिया है।

'सल्तनत मुग़ले आजम' कहानी में टी.वी. सीरियल को आधार बनाते हुए सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य की झाँकी प्रस्तुत की गई है। यह कहानी सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य के अनछुए पहलुओं को अपने आगोश में समेटे हुए है। इसमें जोधा–अकबर, सलीम– अनारकली, सलीम नूरजहाँ, शाहजहाँ–मुमताज, औरंगजेब– हीराबाई, शहजादी जहाँआरा–शायर समर, शाहजादी रौशन आरा–राणाकरण सिंह, शहजादी जेबुन्नीसा–वीर शिवाजी, बाजीराव–मस्तानी एवं बाजीराव द्वितीय और रूपकुंवर के साथ कवि घनानंद और सुजान की प्रेम कहानी को आधार बनाया गया है। इसमें उनकी विफलता के कारणों के साथ–साथ योगदान को भी बताने का प्रयास किया गया है। इन कहानियों में संवादहीनता के दर्शन होते हैं, लेकिन कहीं भी कथावस्तु के विस्तार और रसरंजन में पाठक को कोई बाधा महसूस नहीं होती। इनकी ऐतिहासिक कहानियाँ एक–एक परतों को ऐसे खोलती जाती हैं जैसे इन घटनाओं को हम परिवार के बड़े बुजुर्गों के बीच बैठकर सुनते हैं। सल्तनत मुग़ले आजम कहानी जहाँ एक ओर मुगल सम्राटों को प्रकाश में लाती है, वहीं दूसरी ओर मराठा शानेसौकत को भी दर्शाने में सफल हुई है। इन कहानियों के माध्यम से इतिहास और कहानी के सामंजस्य को कैसे स्थापित किया जा सकता है, यह सिन्हा जी के कला को दर्शाता है। इसमें कहानी और इतिहास का भेद मिट जाता है। यही ऐतिहासिक कहानी लेखन की प्रमुख विशेषता है।

इस कहानी संग्रह में 'बदलता जमाना' एकमात्र सामाजिक कहानी है, जो इनकी सामाजिक समझ को बताने के लिए अकेली ही काफी है। इनकी ऐतिहासिक कहानियों में संवाद कौशल के विकास को स्थान नहीं मिला है। घटना संकेतों के माध्यम से कथा वस्तु को विस्तार दिया गया है, लेकिन 'बदलता जमाना' उस संवादहीनता की स्थिति से ऊपर उठते हुए सिन्हाजी के संवाद कौशल का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करती है। 'बदलता जमाना' वर्तमान के पाश्चात्य विचारों से ओत–प्रोत चरित्रगत भूमिका को दर्शाती है। हम अपने से पुराने लोगों को पोंगापंथी तो कह देते हैं लेकिन यह भूल जाते हैं कि हमारी अगली पीढ़ी भी तो हमें उसी आभूषण से नवाजती है। नीरा बीस दिन के लिए भी अपनी सास को बनाकर खिला सकने में असमर्थ है, क्योंकि वे घर का ही बना खाना खाती हैं। क्योंकि नीरा होटल और पिकनिक को अधिक महत्त्व देती है। उदाहरण देखिए–''यही सब तो परेशानी है। खीजकर नीरा अपने नाखूनों पर इतनी मेहनत से लगाए गए नेल पालिस को मिटाते हुए कहा–''वे कुक का बनाया खाना तो खायेंगी नहीं। मुझे ही बीस दिनों तक खाना बनाना पड़ेगा। जमाना इतना बदल गया है और आगे बढ़ गया है, लेकिन वे अभी भी

पुरातन विचारों से चिपकी हुई हैं। कुक के हाथों का खाना मत खाओ। होटल से खाना मत मंगाओ।'' ये तो नीरा का कथन था, लेकिन एक दिन जब वे पिकनिक पर जा रही थीं, कुछ दूर गई थीं कि उन्हें याद आया कि वे अपना पर्स और मोबाईल भूल आई हैं। जैसे ही वे घर में प्रवेश करती हैं, उन्होंने अपनी बेटी सुमन की आवाज सुनी, वह किसी को फोन कर रही थी–''जल्द ही यहाँ आ जाओ। हम लोग चार बजे तक फ्री हैं और अपनी मर्जी के मालिक हैं। तुम्हें क्या बताऊँ कि मेरी मम्मी कितने पुराने विचारों की हैं। इन्हें लड़के–लड़कियों का मिलना–जुलना बिल्कुल पसंद नहीं है। इन्हें क्या मालूम कि जमाना बदल गया है और कितना आगे बढ़ गया है और ये लोग नये जमाने और नई बातों को समझना ही नहीं चाहते।'' बेटी की बात सुन नीरा असमंजस में पड़ गई कि वह क्या करे, क्या न करे। इस तरह से हकीकत को कितनी संजीदगी से इन्होंने रखा है, जो पाठक को मंत्रमुग्ध कर देता है और उसके मानस पर असर भी डालता है।

मेरी कहानियाँ संग्रह पढ़ने के बाद एक प्रमुख तथ्य जो सामने आता है, वह है प्रेम की अभिव्यक्ति। प्रेम संबंधों को इन्होंने लगभग हर कहानियों में उकेरा है। यही जीवन की सच्चाई है। प्रेम की सच्ची अनुभूति जहाँ व्यक्ति को आह्लादित करती है, वहीं दूसरी ओर उसे उच्चता की ओर भी ले जाती है। यदि प्रेम में वासना और लोलुपता है, तो वह व्यक्ति के पतन का कारण भी बनती है, वह चाहे एक सामान्य इंसान हो या राजतंत्र का नायक। इन दोनों रूपों को इनकी कहानियों में स्थान दिया गया है। दूसरी इनकी कहानियाँ राष्ट्रहित में हुई चूकों को बताते हुए वर्तमान में हमें राह दिखाती नजर आती हैं। उदाहरणस्वरूप हिन्दू राज्य की स्थापना में कटिबद्ध मराठों के ज्यादातर संबंध मुस्लिम नर्तकियों से रहे हैं। ये घटनाएँ हमारी विचारधारा और समाज दोनों को संगठित करने का कार्य करती हैं। इस संग्रह की एक और विशेषता है कि यह इतिहास के अनछुए पहलुओं से हमको जोड़ती है, जहाँ सामान्य लोगों का ध्यान बहुत ही कम गया है। इस संग्रह के शिल्प में नवीनता भी परिलक्षित होती है। कुल मिलाकर यह संग्रह अच्छी कहानियों का गुलदस्ता है, जो हमें विविध आयामों से जोड़ता है।

प्रकाशक– अन्तरा शब्द शक्तिए वारासिवनी (मध्य प्रदेश)

कविताएँ

सदाशिव कौतुक
सुदामानगर, इन्दौर
मो. 9893034149

अँधेरे के साये में

सूर्य से अँधेरा डरता है
इसलिए कि ...
सूर्य एक सच्चाई है
अँधेरा जन्म से ही
सूर्य की अनुपस्थिति में
करवाता रहा चोरियाँ
डलवाता रहा डाके
धोखे और दुराचार
अवैध धन्धों–अवैध संबंधों की गतिविधियों
अँधेरे के साये में ही पहले रहे
देह शोषण के कोठे
कहते हैं...
भूत पिशाच और चुड़ैलों की आत्माएँ भी
अँधेरे में ही निकलती हैं बाहर
अँधेरे का लाभ उठाकर ही इन्द्र ने
किया अहिल्या का दैहिक शोषण
अँधेरे का लाभ उठाकर ही आतंकी घुसपैठिये
प्रवेश कर जाते सीमाओं में
अँधेरा सदियों से मानव और समाज को
भटकाता रहा अँधेरी सुरंगों में
सही मायने मे
अँधेरे से मुक्ति पाने के लिए
विचार की तिली से मनुष्य को ही
एक दीप जलाना होगा
मन के घुप्प अँधेरे में।

2. सर्दी की रात

ठिठुरन भरी सर्दी की रात है
बर्फीली जगहों पर पारा
शून्य से बहुत नीचे उतर आया
जानलेवा ठंढ से
सैकड़ों की संख्या में मर रहे
बुजुर्ग बच्चे गरीब और भिखारी
मैं कंबल से दबा पड़ा
नींद ले रहा हूँ
नींद में एक सपना देख रहा हूँ
मैं चाँद और तारों को देखता हूँ
इस खतरनाक ठंढ में उनके पास
ओढ़ने के लिए कुछ नहीं है
मैं सपने को तोड़कर बाहर आता हूँ
सामने दीवार पर टँगी हुई
एक तस्वीर देखता हूँ
जिस पर चाँद तारे ठिठुर रहे हैं
मैं उस तस्वीर पर अपना कम्बल डाल देता हूँ।

3. एकांत में

मैं कल जंगल में गया था
वहाँ पहाड़ियाँ थीं और नदी थीं
नदी के दोनों तटों पर
हरे–हरे वृक्ष झाड़ियाँ
कलकल बहती स्वच्छ धाराएँ थीं
रात को नींद में सपना आया
मुझे प्यास लग रही है बार–बार
पानी पीने जाता हूँ नदी पर
हथेलियों की ओक से पानी पीता था
कलकल बहते पानी का
संगीत सुनता था
रात के एकांत में
जब अपने बच्चों को सुनाया
वह किंकर्तव्यविमूढ़ सा
हमें देखता ही रहा।

आलेख

राष्ट्रनायक शहीद भगत सिंह

डॉ0. अमर सिंह बधान
प्रोफेसर एमरिट्स
सेक्टर 24 डी, चंडीगढ़
मो. 9876301085

शहीद भगत सिंह एक खानदानी देशभक्त एवं महान क्रांतिकारी थे। उनकी माता विद्यावती देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत थीं, तो उनके पिता किशन सिंह देश के दीवाने थे। उनके चाचा अजीत सिंह एवं स्वर्ण सिंह अपने समय के प्रसिद्ध क्रांतिकारी थे। जलियाँवाला बाग हत्याकांड और लाला लाजपतराय की शहादत ने भगत सिंह के दिल में देश को अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त करवाने के लिए भयंकर तड़प पैदा कर दी थी। साथ ही रासबिहारी बोस और करतार सिंह सराभा जैसे महान क्रांतिकारियों के जीवन और व्यक्तित्व का भी भगत सिंह पर गहर प्रभाव पड़ा था। अटूट आत्म–विश्वास, दृढ़ संकल्प, फौलादी इच्छाशक्ति और कुछ विरल सा कर दिखाने की भावना से परिपूर्ण थे भगत सिंह। इसीलिए उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन की उष्म पृष्ठभूमि में अपने क्रांतिकार विचारों और कार्यों को अमली रूप देने तथा अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध मोर्चा लेने की ठान ली। भगत सिंह के बारे में कहा जाता है कि यदि वह क्रांतिकारी न होता तो शायद वह एक संवेदनशील कवि, हमदर्द लेखक अथवा समर्पित गायक होता।

लेकिन भगत सिंह तो शहादत के रंग में स्वयं को रंगना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने 'मेरा रंग दे वसंती चोला' की जोशीली माँग करके जैविक धरातल पर पीले रंग के सूक्ष्मतम अर्थ की प्रतीति करवा दी। उसने बखूबी याद करवा दिया कि इस वसंती चोले को पहनकर महाराणा प्रताप ने तलवारों के साये में वतन के गीत गाये थे, शिवाजी ने इसे अपनाकर कौम की खातिर जान की बाजी लगा दी थी और इसी वसंती चोले को पहनकर रानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजों से जा भिड़ी थी। स्वयं भगत सिंह ने इसी वसंती चोले को अंगीकार करते हुए एवं मौत को ललकारते हुए अमर शहीदी पाई थी। क्या यह भी याद कराने की जरूरत है कि राजस्थान में राजपूतों का वसंती परिधान रणभूमि में कफन व शहादत का प्रतीक था। राजपूत रानियों एवं राजपूत सिपाहियों की पत्नियों द्वारा जौहर करने के मूल में भी पीला परिधान ही था।

एक अन्य कोण से देखा जाए तो भारतीय संदर्भ में मार्च का महीना बड़ा क्रांतिकारी रहा है। जहाँ इस महीने में प्रकृति के क्रांतिकारी रुख, अपार सौंदर्य एवं अपना सर्वस्व उड़ेलकर रख देने की भावना है, वहीं भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु, गणेशशंकर विद्यार्थी तथा इन जैसे कई अन्य भारतीय सपूतों ने अपनी अमर शहादत के लिए सुहावने मार्च महीने को ही चुना। इस महीने में प्रकृति अपने समूचे खजाने को बिखेर देती है। फिर कुर्बानी प्रिय देशभक्त भी पीछे नहीं रहते। प्रकृति में फूलों की तरह उनके हृदय में भी त्याग की भावना प्रस्फुटित होती है। मस्ती भरे मार्च के महीने में देश प्रेम और बलिदान की भावना की मिसाल प्रस्तुत करते हुए और चेहरे पर फूल–सी ताजा मुस्कुराहट लिए भगत सिंह मौत को चुनौती दे गया।

कहना न होगा कि भगत सिंह पहला क्रांतकारी था, जो संपूर्ण योजना एवं एक विशेष–दर्शन लेकर आजादी की लड़ाई में कूदा था। उसके दिमाग में स्वतंत्र भारत का नक्शा था, एक जबर्दस्त योजना थी। जबकि अन्य क्रांतिकारियों का लक्ष्य अंग्रेजों को भारत से भगाना था। लेकिन अंग्रेजों को भारत से निकालकर वे क्या करेंगे, यह उन्हें स्पष्ट नहीं था। बलिदान की भावना में भी कोई कमी नहीं थी, परन्तु दृष्टिकोण नहीं था। यदि किसी क्रांतिकारी के पास दृष्टि थी भी तो वह छोटी दृष्टि थी। एक निश्चित योजना, स्पष्ट दर्शन एवं व्यापक दृष्टि के कारण ही भगत सिंह क्रांतिकारियों में अग्रगण्य था। निर्भीक वक्ता, विद्वान लेखक एवं पत्रकार के रूप में तो भगत सिंह प्रसिद्ध था ही। भगत सिंह के पत्रों एवं कोर्ट बयानों से जाहिर है कि वे पूर्णतया मानवतावादी थे। वे निहत्थे और निर्दोष व्यक्तियों का खून बहाने को गलत समझते थे। उन्होंने असेंबली हॉल में बम फेंका, मगर खाली जगह देखकर। ऐसे स्थान पर जहाँ किसी की जान न जाए। उनका उद्देश्य यही था कि अंग्रेजों के बहरे कानों तक गरीब भारतीयों की आवाज को इस धमाके के माध्यम से पहुँचाया जाए। वे चाहते तो सारे असेंबली हॉल को ध्वस्त कर सकते थे, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया।

ताज्जुब नहीं कि 17 दिसम्बर, 1928 को लाहौर में साण्डर्स हत्याकांड के बाद तो भगत सिंह एक प्रतीक बन गये थे। उधर 7 अक्टूबर, 1930 को ट्रिब्यूनल ने लाहौर षड़यंत्र मामले का फैसला देते हुए भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी की सजा सुना दी। लेकिन भगत सिंह के चेहरे पर जरा भी शिकन नहीं थी। जबकि इस फैसले से पूरा देश हिल उठा था। भगत सिंह के पिता ने ट्रिब्यूनल को एक पत्र लिखा, जिसमें भगत सिंह को मुक्त करने की प्रार्थना की गयी थी। परन्तु इस बात का पता चलते ही भगत सिंह ने जो पत्र अपने पिता को लिखा, वह क्रांतिकारियों के इतिहास में अन्यत्र न पाई जानेवाली अनूठी मिसाल है। कुछ यों था वह पत्र, 'मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि अपने विशेष ट्रिब्यूनल को मेरे बचाव के लिए एक प्रार्थना पत्र भेजा है। यह समाचार इतना दुःखदायी है कि मैं उसे शांत होकर नहीं सुन सकता। यह एक परीक्षा की घड़ी थी और मैं कहूँगा कि आप उसमें असफल रहे। सच तो यह है पिताजी! आपने मेरी पीठ में छुरा भोंका है। मेरा जीवन उतना मूल्यवान नहीं, जितना आप समझते हैं आप एक देशद्रोही से कम नहीं है। मेरे सिद्धांत मेरे जीवन से बड़े हैं।'

स्पष्ट है कि भगत सिंह को शहीदी का राज मालूम था। इसीलिए उन्होंने अंग्रेजों के हर धमाके का जवाब धमाके के साथ दिया। उन्होंने यह साबित भी किया कि हिन्दुस्तानियों का खून जम नहीं सकता है। भगत सिंह तो देशभक्ति का भँवरा था, कुर्बान हो जानेवाला जाँबाज था। असेंबेली हॉल में बम फेंकने के बाद वह भागा नहीं, गिरफ्तारी के लिए खुद को अर्पित कर दिया। समय और समाज का चेहरा बदलनेवाला महान क्रांतिकारी भगत सिंह 23 मार्च, 1931 की आधी रात को 'इंक्लाब जिंदाबाद' की गर्जना करते हुए फाँसी पर झूल गया। मौत को अपनी दुल्हन बनाने के कुछ समय पूर्व भगत सिंह बड़ी शांत एवं अविचलित मुद्रा में लैनिन की जीवनी का अंतिम पैरा पढ़ रहा था।

भगत सिंह के व्यक्तित्व का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू था नारी मनोविज्ञान। जिन दिनों भगत सिह पर मुकदमा चल रहा था, उसके गाँव के बाहर एक साधु आया। लोगों ने भगत सिंह की माँ को साधु के पास जाने की सलाह दी कि यदि उनकी कृपा हुई तो भगत सिंह बच जाएगा। साधु ने माँ विद्यावती को भगत सिंह के सिर पर डालने के लिए भभूत दी। विद्यावती ने जेल में मिलते समय भगत सिंह के सिर पर चुपके से भभूत डालने का प्रयास किया तो भगत सिंह ने उनके मन की बात भाँपकर टोकते हुए कहा, 'जो राख

मेरे सिर में डालना चाहती हो, वह छोटे भाई कुलवीर के सिर में डालो, ताकि वह हमेशा आपके साथ रहे।' फाँसी के कुछ दिन पहले ही भगत सिंह ने अपनी माँ से कहा था, 'फाँसी के दिन आप न आना, बेबेजी। आप रोएँगी और बेहोश हो जाएँगी।'

जब भगत सिंह जेल कोठरी में अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा में थे, तो अंग्रेज अधिकारियों की पत्नियाँ उनके चुम्बकीय व्यक्तित्व को देखने के लिए आयी थीं। अपनी माँ, बहन तथा बटुकेश्वर दत्त व जयदेव को जेल से लिखे पत्रों में भगत सिंह के मानवीय प्रेम की प्रगाढ़ता को बखूबी अभिव्यक्ति मिली है। उन्होंने अपनी जेल कोठरी के सफाई कर्मचारी को प्यार से 'बेबे' का नाम दे रखा था। यह पूछे जाने पर कि वे उसे 'बेबे' कहाकर क्यों बुलाते हैं? भगत सिंह ने उत्तर दिया कि मेरे पूरे जीवन में केवल दो व्यक्तियों ने मेरी निजीतम आवश्यकताओं का ध्यान रखा है—एक मेरे बचपन की माँ और दूसरा यह सफाई कर्मचारी मेरी युवावस्था की माँ।

फाँसी लगने से कुछ समय पहले वहाँ के जेलर बहादुर मोहम्मद अकबर अली ने भगत सिंह से पूछा कि क्या कोई आपकी विशेष इच्छा है, जिसे आप पूरा करना चाहते हैं। यह सुनकर भगत सिंह ने कहा, 'मैं बेबे के हाथ का बना भोजन खाना चाहता हूँ।' जेलर ने बेबे का अर्थ भगत सिंह की माँ से लगाया। लेकिन भगत सिंह का आशय सफाई कर्मचारी से था। जब सफाई कर्मचारी को यह बात कही गयी तो वह हक्का—बक्का रह गया। उसने कहा—'सरदारजी! मेरे हाथ आपके लिए खाना बनाने लायक नहीं है।' इसपर भगत सिंह ने बड़े प्यार से उसके कंधे को थपथपाते हुए कहा, 'हर माँ उन्हीं हाथों से भोजन—बनाती है, जिनसे वह बच्चे की सभी आवश्यकताओं को देखती—समझती है।' भगत सिंह ने उसी 'बेबे' के हाथ से बनी रोटियों को खाया। निस्संदेह, इस प्रसंग में भगत सिंह के समाजवाद, साम्यवाद, भाईचारा एवं समानता के वैचारिक रेशे गहराई लिये दीखते हैं।

जब भगत सिंह ने लाहौर स्टेशन पर अपने मित्रों से विदाई ली तो उन्होंने कहा था, 'मित्रो! मैं तुम्हें एक बात कहता हूँ कि यदि मैं इस गुलाम देश में अपनी शादी करता हूँ, तो मौत ही मेरी दुल्हन होगी, मेरी शवयात्रा मेरी शादी की शोभायात्रा होगी और मेरी शहीदी मेरे प्रतिष्ठित मेहमान होंगे।' जब भगत सिंह को फाँसी दे दी गई, 'प्रताप' के संपादक पडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', जिनके साथ भगत सिंह ने कई महीने काम किया था, ने कहा—'यदि किसी देश के युवक को सत्यनिष्ठा, श्रेष्ठता, बहादुरी, संतोष, आदर्शवाद, जिज्ञासा और स्वर्ण शुद्धता का प्रतिरूप घोषित हो तो इन सभी गुणों की साकार मूर्ति निस्संदेह भगत सिंह ही है।' भगत सिंह की शहादत के बाद गाँधी ने भी स्वीकार किया था कि जहाँ तक याद है भारतीय इतिहास में भगत सिंह के मुकाबले का कोई अन्य राष्ट्रनायक नहीं हुआ। बेशक भगत सिंह देश की खातिर कुर्बान हो गया, पर उसका सत्य एवं दर्शन, विचार एवं दृष्टिकोण देशवासियों के लिए प्रकाशस्तंभ हैं।

कविता

हिन्दी

भोला प्रसाद मंडल 'भ्रमर'
अम्बई, भागलपुर—5
मो.7091009572

हिन्दी भारतीय भाषाओं
के भव्य भाल की बिन्दी
कश्मीर से कन्याकुमारी
तलक बोली जाती हिन्दी।

बहती आयी सदियों से
जनमानस में भाषा हिन्दी
रोको मत, इसे बहने दो
सरल—सुगम—सुबोध हिन्दी

जैसा लिखते, वैसा पढ़ते
और बोलते वैसी हिन्दी
उतरी खड़ी जाँच में
वैज्ञानिक भाषा हिन्दी

रूस की भाषा रूसी
ब्रिटेन की भाषा अंग्रेजी
चीन की भाषा चीनी
हिन्दोस्तां की भाषा हिन्दी

मुगलिया हुकूमत ने भारत
में उर्दू भाषा थोपी
अंग्रेजी हुकूमत ने यहाँ
अंग्रेजी भाषा रोपी

गई नहीं थोपी बरबस
किसी पर भाषा हिन्दी
समय के थपेड़ों सहकर
आज विकासोन्मुख हिन्दी

हिन्दी लिखें हिन्दी पढ़ें
एवं सीखें झटपट हिन्दी
भारत के नागरिकों
की राष्ट्रभाषा हिन्दी

विदेश के विश्वविद्यालयों
में पढ़ाते प्रोफेसर हिन्दी
विश्वभाषा बनने की
दिशा में अग्रसर हिन्दी

जन—जन की अभिव्यक्ति
की भाषा है हिन्दी
माँ भारती के श्रीमुख
की भाषा है हिन्दी

श्रमिक—साधु—संत—फकीरों
ने की विस्तार हिन्दी
गिनाऊँ कहाँ तक गिनती
कोटिक कंठहार हिन्दी

भारतीय भाषाओं की
प्यारी सगी बहन हिन्दी
फूलें फलें सभी भाषाएँ
कहती बड़ी बहन हिन्दी।

आलेख

अभावों और अन्तर्भावों के बीच रचनाधर्मिता : पं. राहुल सांकृत्यायन

डॉ. मंजरी पाण्डेय
सारनाथ, वाराणसी
दूरभाष 9307488087

अभावों और अन्तर्भावों के बीच रचनाधर्मिता को जन्म देनेवाले अद्‌भुत विलक्षण साहित्यकार थे पं. राहुल सांकृत्यायन। इन जैसा न भूतो न भविष्यति। बचपन में मातृत्व से वंचित अल्प समय में ही पिता का साया छिन जाने से विद्रोही हो गए। कोई नियंत्रण न होने से मनमाने हो गए। कितनी बार घर–बाहर के लोगों की डाँट सुनता, मार खाता होगा यह बालक। पर अपने मन की किससे कहे?अन्य साथियों को माता–पिता द्वारा दुलारते देखकर कितनी बार आहत हुआ होगा मन। उम्र दस ग्यारह वर्ष ही तो थी। नानी ने उन्हे बाँधने के लिए बाल–विवाह करा दिया, पर हवा के रुख को कब किसने पकड़ा है। खेलने, खाने, पढ़ने की आयु में घर छोड़ने का क्रांतिकारी निर्णय ले बैठा, बिना यह सोचे समझे कि वह कहाँ जाएगा, कहाँ रहेगा, क्या खाएगा?बस निकल पड़ा घर से। यही नहीं घर के लोगों से मन ऐसा उचाट हुआ कि किसी रिश्तेदारी, नातेदारी में भी नहीं गए। यहीं उनके संकल्प की दृढ़ता परिलक्षित हो गई, जिसे उन्होंने अपना संबल बनाकर रखा। अन्तर्भाव उमड़ने घुमड़ने लगे, जिन्हें आगे चलकर उन्होंने शब्दों में पिरोना शुरू कर दिया और कब एक नैसर्गिक, स्वतरु स्फूर्त साहित्यकार बन बैठे, उन्हें भी पता नहीं। भागकर मठ में गए और साधु हो गए। विचार बिन्दु बनने लग गए। यहीं रचनाधर्मिता की नींव पड़ गई। असमंजस की स्थिति में भागकर कलकत्ते आ गए, परंतु ज्ञान– पिपासु मन को चैन कहाँ? किशोरावस्था में ही सारे भारत का भ्रमण किया। बुभुक्षित और जिज्ञासु मन लेकर जहाँ जाते, जितने भी समय के लिए वहीं के होकर रह जाते, इसीलिये स्वाभाविक रूप में उन–उन जगहों की भाषा, बोली, खान–पान, रहन–सहन, जीवनशैली सब कुछ ग्राह्य था, जिनका प्रयोग उनकी रचनाओं की एक विशिष्ट शैली बन गई। तमाम अस्थिरताओं ने उनकी प्रवृत्ति ही यायावरी बना दिया, जो कहीं भी उन्हें सदा के लिए रुकने नहीं देता। देशभक्ति की भावना भी कूट–कूट कर भरी थी। अतः ब्रिटिश शासन में जब राजनीति का संक्रमण काल चल रहा था, उस समय उनका झुकाव राजनीति की ओर भी हुआ; परन्तु फिर लक्ष्य स्मरण होते ही वो अस्थिर बेचैन हो उठते जो उन्हें जल्द ही उचाट कर देता और वह निकल पड़ते आगे की ओर। इस तरह साधु वेशधारी संन्यासी, वेदान्ती, आर्यसमाजी, किसान, नेता क्या–क्या नहीं बने। चिन्तन–मनन के इस लम्बे सफर ने रचना की पोख्ता पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। मन अब परिपक्व हो चला था, तब श्रीलंका जाकर बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गए। उनका नया नामकरण हो गया राहुल। सांकृत्य गोत्र के कारण सांकृत्यायन कहलाये। काशी के महापण्डितों ने उनके अद्‌भुत ज्ञान व विलक्षण तर्कशक्ति को देखकर महापण्डित की उपाधि से उन्हें विभूषित किया। तभी से ये महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के नाम से प्रसिद्ध हो गए। जीवन की बहुविध यात्राओं नें उन्हे बहुभाषाविद, चिन्तक, विचारक, इतिहासविद, तत्त्वान्वेषी और सबसे बड़ा युग– प्रवर्तक साहित्यकार बना दिया।

उनका समग्र जीवन ही रचनाधर्मिता से जुड़ा रहा, अतः साहित्य की कोई विधा उनसे नहीं छूटी। निबंध, कहानी, आत्मकथा, संस्मरण व जीवनी तथा सबसे अद्‌भुत यात्रा साहित्य को जन्म दिया। इसीलिए हिन्दी यात्रा साहित्य के ये पितामह कहे जाते हैं। साहित्य जगत् सदैव इसके लिए उनका ऋणी रहेगा। छत्तीस भाषाओं के ज्ञाता थे। उन जैसा साहित्यकार जन्मता नहीं, अवतरित होता है। अन्ततः बौद्ध धर्म में आस्था ही उनकी चिर आस्था बनी। एतदर्थ बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन करने के लिए उन्होंने पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि का अध्ययन किया। उसी समय जब ये अखिल भारतीय किसान महासभा के महासचिव रहे सन् १९१७ (1917) की रूसी क्रांति ने भी मन को झकझोरा। विमुख होकर दक्षिण भारत की यात्रा पर निकल पड़े। लाहौर गए, जहाँ की संस्कृतियों का दिग्दर्शन उनके लेखन में स्पष्ट दिखाई देता है। अतः उनकी मेधा को टुकड़ों में बाँटकर नहीं देखा जा सकता, बल्कि समग्र रूप में ही उनकी रचनाधर्मिता का आस्वादन एवं आकलन किया जा सकता है। हिन्दी उनकी प्रमुख लेखन–भाषा रही, परंतु भोजपुरी और अंगिका में भी उन्होंने खूब लिखा। इसे बोलना भी पसंद करते थे। यह तमाम अन्तर्विरोधों के बावजूद जड़ से जुड़ाव दर्शाता है। सब कुछ होते हुए भी राष्ट्र भाषा के प्रबल समर्थक रहे। उनका मानना था–बिना भाषा के राष्ट्र गूँगा है। अपनी यायावरी प्रवृत्ति के कारण ज्ञान का नवनीत एकत्र किया और रचनाओं में उन्हें परोसा। उनका मानना था कि घुमक्कड़ी प्रवृत्ति का व्यक्ति उन्मक्तमना होता है। इसके लिए उन्होंने कहा भी था–भावी घुमक्कडो! संसार तुम्हारे स्वागत के लिए बेकरार है यानी विशुद्ध साहित्य लेखन की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने स्वतः अपनी भी धरती अपना आकाश तय किया और जग को विस्तृत थाती सौंप गए।

जहाँ २१ वीं सदी में विश्व ग्लोबलाइजेशन की चर्चा कर रहा था, वहाँ राहुलजी तिब्बत की दुर्गम पहाड़ियों की कठिन पदयात्राएँ और अनुभव एकत्र करने में लगे हुए थे। उन ग्रंथों का संकलन करने में लगे हुए थे, जो भारत से वहाँ ले जाए गए थे। यानी अपनी चीज को वापस लाने के दुस्साध्य प्रयास में लगे। इसमें सफल भी हुए। आज ये ग्रंथ पटना संग्रहालय में संरक्षित हैं यानी धारा के विपरीत जाकर सफलता हासिल करने का पाठ पढ़ाया। जैसे वो निरंतर गतिशील थे, वैसे ही कोई भी व्यक्ति किन्हीं परिस्थितियों में भी अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। उनकी पुस्तक वैज्ञानिक भौतिकवाद एवं दर्शन दिग्दर्शन उनके वैश्विक विचारधारा के उदाहरण हैं।

देश, समाज और साहित्य के लिए न जाने क्या–क्या करने की उनकी तड़प थी, जिसके कारण वह निरंतर चलायमान रहे। जिस रचनाधर्मिता के बीज का वपन बचपन में किशोरावस्था में घर छोड़ते समय ही हो गया, उसके विस्तार व संवर्धन के लिए, आत्मिक संतुष्टि के लिए देश विदेश भ्रमण करते रहे और नित नये अनुभव कलेवर की रचनाएँ रचती गयीं। जीवन की यात्रा के साथ ही उनकी यात्राओं का भी अंत हुआ।

राहुलजी ने कुछ अर्जित नहीं किया, बस जो जिया, वही उनका साहित्य है। विपुल संपदा वो हिन्दी साहित्य को सौंप गये। 'राहुल का संघर्ष' पुस्तक को पढ़कर उनके व्यक्तित्व व कृतित्व को अच्छी तरह समझा जा सकता है, जिसमें अट्ठारह निबंध में उनके कुल, परंपरा, घर–बार, सब कुछ विस्तृत ढंग से निबद्ध है। नमन करती हूँ, अपनी इन पंक्तियों के साथ–

अद्‌भुत हो विलक्षण हो अथाह तुम्हारा जीवन ।
साहित्य जगत् को छोड़ गए देकर चिन्तन मनन ।

परख

कुसुम अंसल के कथा साहित्य में चित्रित समलैंगिकता

प्रो. गजानन हरिभाऊ सर्वज्ञ
सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
महिला कला महाविद्यालय, औरंगाबाद
मो. 09763992459

कुसुम अंसल एक बहुमुखी प्रतिभा की लेखिका है। उन्होंने समकालीन समस्याओं को अपने साहित्य का विषय बनाया है। वह सभी विषयों पर सशक्त रूप से लेखन करती हुई दिखाई देती है। उन्होंने समकालीन प्रश्नों को अपने समग्र साहित्य में स्थान दिया है। उनके साहित्य में मनुष्य की आज की महत्त्वपूर्ण समस्याएँ चित्रित हुई हैं। उसमें से समलैंगिकता भी एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। क्योंकि आज वह वैश्विक समस्या बन रही है। कुसुम अंसल के साहित्य में समलैंगिकता के दुष्परिणामों का चित्रण हुआ है। उनके साहित्य में स्त्री और पुरुष दोनों के भी समलैंगिक संबंधों का चित्रण हुआ है।

समलैंगिकता का वर्णन प्राचीन साहित्य में भी हुआ है। परम्परागत रूप से भले ही उसे मान्यता न हो, लेकिन समाज में ऐसे कई लोग हैं, जिनकी यह आवश्यकता बन जाती है। सच तो यह है कि समलैंगिकता का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना कि मनुष्य का अस्तित्व। समलैंगिकता के वैश्विक परिदृश्य के संबंध में जी.एल. शर्मा कहते हैं कि "विश्व के 77 देशों ने समलैंगिक संबंधों को अप्राकृतिक मानते हुए इन्हें अपराध की श्रेणी में शामिल कर रखा है। यहाँ तक कि ईरान, सऊदी, अरब, यमन, सूडान, नाइजीरिया एवं सोमालिया जैसे देशों में समलैंगिक संबंधों के लिए मौत की सजा तक का प्रावधान है। यद्यपि विश्व के 144 देश समलैंगिक संबंधों को अपराध नहीं मनाते हैं। समलैंगिक संबंधों को सर्वप्रथम 1811 ई. में नीदरलैंड द्वारा मान्यता प्रदान की गई थी।... नीदरलैंड ने 2001 में समलैंगिक विवाह (भ्वउवेमगलंस ।ससपंदबम) को मान्यता देकर नई पहल की। वर्तमान में 13 देशों में समलैंगिक जोड़ों को मान्यता मिली हुई है।"[1] इस प्रकार समलैंगिकता के वैश्विक परिदृश्य को समझा जा सकता है।

जहाँ तक भारतीय समाज का प्रश्न है, तो इसमें स्त्री–पुरुष के मध्य प्रजननमूलक यौन क्रिया के अलावा कुछ अलग प्रकार के यौन संबंध भी बनते रहे हैं, जिनमें समलैंगिकता भी एक है। यद्यपि हमारे समाज में ऐसे यौन संबंधों को कभी खुले तौर पर सामाजिक रूप से स्वीकार नहीं किया गया। ऐसा माना जाता है कि भारत में करीब 25 लाख लोग समलैंगिक है। इसमें "दिल्ली की एड्स नियंत्रण सोसायटी द्वारा 2003 में कराये गए सर्वेक्षण के अनुसार दिल्ली में...देह व्यापार में लगे पुरुष समलैंगिकों की संख्या इस सर्वेक्षण ने 7,532 आँकी है।"[2] इस बात से स्पष्ट होता है कि भारत के महानगरों में समलैंगिकों की यौन लिप्सा कितनी बढ़ रही है। समलैंगिक लोगों के अधिकारों की रक्षा करने और उन्हें वैधानिक मान्यता दिलाने के लिए एल.जी.बी.टी. (रूठज.स्मेइपंदए ंलए ठपे.मगनंस ंदक ज्तंदेहमदकमत) नामक समुदाय विश्व स्तर पर एक स्वैच्छिक संघटन के रूप में कार्य कर रहा है। 'नाज फाउण्डेशन' भी इसी प्रकार का संघटन है, जो समलैंगिकों के अधिकारों के लिए कार्य कर रहा है।

अब तक भारत में भी समलैंगिकता एक दंडनीय अपराध माना जाता था, किन्तु हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने इसे वैधानिकता प्रदान की है। 6 सितम्बर, 2018 को सुप्रीम कोर्ट ने धारा 377 को समानता के अधिकार का हनन मना है। इसके संदर्भ में 7 सितम्बर, 2018 के 'जनसत्ता' समाचारपत्र के पहले पन्ने पर लिखा गया था–"सुप्रीम कोर्ट के पाँच सदस्यीय संविधान पीठ ने गुरुवार को एकमत से भारतीय दंड संहिता की 158 साल पुरानी धारा 377 के उस हिस्से को निरस्त कर दिया, जिसके तहत परस्पर सहमति से अप्राकृतिक यौन संबंध बनाना अपराध था।"[3] इसके तहत भारत में भी समलैंगिकता को कानूनन इजाजत मिली है, लेकिन कुसुम अंसल ने अपने साहित्य के माध्यम से समलैंगिकता के कारण समाज पर होनेवाले विपरीत परिणामों को दर्शाने का प्रयास किया है।

कुसुम अंसल के कथा साहित्य में समलैंगिक संबंधों का चित्रण उपन्यासों, कहानियों में हुआ दिखाई देता है। लेखिका के 'तापसी' उपन्यास में समलैंगिक संबंध दिखाई देते है। इस उपन्यास में 'बरौता' नाम की एक विधवा है, जो बाकी की विधवाओं की मुखिया है। वह आश्रम की अन्य विधवाओं पर समलैंगिक अत्याचार करती है। इस उपन्यास की नायिका 'तापसी' विधवा होकर वृन्दावन के 'श्री राधाकृष्ण विधवा आश्रम' में दाखिल होती है। तब उस पर भी 'बरौता' समलैंगिक अत्याचार करती है। इसके विषय में लेखिका ने उपन्यास में लिखती है कि "एक काली औरत उस पर झुकी थी (रूठज. स्मेइपंदए ंलए ठपे.मगनंस ंदक ज्तंदेहमदकमत) उसके कपड़े शरीर से दूर जा पड़े थे। निर्वस्त्र उस तगड़ी औरत का शरीर उस पर किसी काली प्रेतात्मा–सा ताना था। वह चीखती रही, चिल्लाती रही, आसपास की औरतें तमाशा देखती रहीं। काली औरत के दाँत, उसकी बदबूदार टपकती लार, उसके सारे शरीर पर कालिख–सी पोत गये थे। औरत ने औरत को इस स्थिति तक पहुँचा दिया, जहाँ उसकी समूची शारीरिक शक्ति और उसका कमजोर विद्रोह उसे बेहोशी की स्थिति तक छोड़ कर चला गया।"[4] इस कथन से नायिका पर होनेवाले समलैंगिक अत्याचार का पता चलता है। नायिका और बाकी की विधवाएँ मजबूरन उसका यह अत्याचार सहन करती थी। वह जब चाहे, जिसके साथ चाहे समलैंगिक संबंध प्रस्थापित करती थी । इसके संबंध में लेखिका कहती है–"पता नहीं कब, रात के कौन से पहर में 'कोई' उसके शरीर पर हावी हो रहा था। उसका शरीर शरीर न होकर मिट्टी जैसा हो गया था, जिसे वह भयानक काली औरत, रौंद रही थी, घसीट रही थी। तापसी चीखकर उठ बैठी (रूठज. स्मेइपंदए ंलए ठपे.मगनंस ंदक ज्तंदेहमदकमत) वैसा बलात्कार तो उसके बीमार पति ने भी नहीं किया था शायद?"[5] इस कथन से स्पष्ट हो गया है कि समलैंगिकता के कारण किस प्रकार एक औरत ही दूसरी औरत का शोषण करती है। इसके उपन्यास के माध्यम से लेखिका समलैंगिकता के दुष्परिणामों को पाठकों के सामने रखने का प्रयास करती है।

लेखिका के उपन्यास के साथ–साथ कहानियों में भी समलैंगिक संबंधों का चित्रण हुआ है। लेखिका की कहानी 'अंधी यात्रा' में इसी प्रकार के संबंधों का चित्रण हुआ है। इस कहानी में 'प्रवीण' और 'नीरज' दोनों में होमोसेक्सुअल्स (समलिंगी) संबंध दिखाई देते है। दोनों बहुत वर्षों से साथ में रहते थे। इतना ही नहीं दोनों का एक ही बेडरूम है। दोनों भी आपस में समलैंगिक संबंध प्रस्थापित करते थे। वो एक–दूसरे के बीच किसी को नहीं आने देते थे। लेकिन कुछ दिनों बाद उनके जीवन में 'सीमा' नाम की लड़की आती है। वह उनके बेडरूम अलग करती है। दोनों को भी अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करती है, ताकि वो दोनों समलैंगिकता को छोड़ दे। इसमें 'प्रवीण' उसकी ओर खिंचा चला जाता है, लेकिन नीरज को यह अच्छा नहीं लगता। जिस कारण वह खुद को अकेला महसूस करता है। रात भर इधर–उधर घुमाता रहता है। वह अन्दर से पूरी तरह टूट जाता है। नीरज एक दिन रात में एक टैक्सीवाले का खून कर देता है। वजह पूछने पर चिल्लाकर कहता है–"नामरद कहता था–रस्याला।"[6] इस कथन से समझा जा सकता है कि जिस व्यक्ति को समलैंगिकता की आदत लगती है, वह अपने साथी से दुरी बर्दाश्त नहीं कर सकता। जिस कारण वह ऐसे आपराधिक कृत्य करने लगता है। उसे किसी के ताने भी बर्दाश्त नहीं होते। टैक्सीवाला नामरद कहता है, तो वह उसका खून कर देता है। इसका मतलब समलैंगिकता के कारण व्यक्ति किसी प्रकार के अपराध करने से भी नहीं कतराता, जो समाज के लिए घातक साबित हो सकता है।

'उस जैसा' इस कहानी में भी समलैंगिकता का चित्रण हुआ है। इस

कहानी की नायिका 'अविनाश' नाम के एक युवक से प्रेम करती है। अविनाश का 'मनु' नाम का एक मित्र है। दोनों के बीच में समलैंगिक संबंध है। नायिका को इस बात का पता तब लगता है, जब वह अविनाश से मिलने उसके घर जाती है। तब नायिका वहाँ का दृश्य देखकर कहती है–''मेरे पैरों के नीचे से धरती खिसक गई थी। मनु और अविनाश एक ही बिस्तर पर जैसे भी थे, मेरे कल्पना के परे की बात थी। मैं पसीने से लथपथ काँपती हुई दौड़ रही थी।''[7] इस कथन से अविनाश और मनु के समलैंगिक संबंधों की पुष्टि होती है। ऐसे संबंधों के कारण समाज पर विपरीत परिणाम होता हुआ दिखाई देता है।

एक और कहानी भी है 'गुलाबी मुस्कान', जिसमें भी समलैंगिकता का चित्रण दिखाई देता है। इस कहानी में 'हेमू' नाम का एक पात्र है, जिसके पिता का एक डिपार्टमेंटल स्टोर है। उसकी शादी एक खूबसूरत लड़की से होती है। हेमू एक 'गे' व्यक्ति था। जिस कारण शादी के कुछ महीनों बाद उसकी पत्नी एक लड़के के साथ भाग जाती है। तब हेमू गाँव के किसी रिश्तेदार (मणिलाल) को काम के लिए लाता है। हेमू मणिलाल के साथ समलैंगिक संबंध रखने का प्रयास करता है। हेमू उसे हमेशा गुलाबी कमीज पहनने को मजबूर करता है। जब मणिलाल उससे तंग आकर घर जाने की बात करता है, तो हेमू कहता है–''जाएगा कैसे साले...तेरे माँ–बाप को ढेर सारा रुपया दिया है...मजाक समझा है चला जायेगा?''[8] हेमू को समलैंगिकता की आदत लग जाती है। वह मणिलाल को हमेशा अपने साथ रखता है, जिस कारण मणिलाल पागल हो जाता है और उसे अस्पताल में भर्ती करना पड़ता है। तो समझ सकते हैं कि समलैंगिकता कितनी बुरी है, जो अच्छे–खासे व्यक्ति को भी पागल कर देती है।

इस प्रकार कुसुम अंसल ने अपने साहित्य के माध्यम से समलैंगिकता के दुष्परिणामों का चित्रण किया है। वह समाज को ऐसे संबंधों से दूर रहने की सलाह देती है। समलैंगिकता दरसल बहुपक्षीय एवं गंभीर विमर्श है, जिस पर खुले दिमाग से बहस एवं विमर्श की आवश्यकता है। जब हम इसके नैतिक एवं धार्मिक पक्ष को देखते हैं, तो यह हमारी सनातन संस्कृति एवं संस्कारों पर कुठाराघात लगता है। समलैंगिक प्रवृत्तियाँ विवाह, परिवार एवं रिश्तेदारी जैसी सामाजिक संस्थाओं को चुनौती देती नजर आ रही है। इस परिप्रेक्ष्य में लेखिका ने समलैंगिकता को प्रकृति के विरुद्ध पाशविक जीवनशैली का परिणाम माना है। लेखिका आज की वास्तविक परिस्थिति से भी हमारा परिचय कराती है। आज समाज में, शहरों में यह समलैंगिकता अधिक तेज गति से फैल रही है। लेकिन उसके दुष्परिणामों को भी समाज को भुगतना पड़ेगा। यह बात लेखिका अपने साहित्य के माध्यम से करती हुई दिखाई देती है।

संदर्भ :

1. जी एल. शर्मा, सामाजिक मुद्दे, पृ. 442
2. सं. प्रो. कमला प्रसाद, स्त्री : मुक्ति का सपना, पृ. 85
3. जनसत्ता – समाचार पत्र, तिथि 06.09.2018, पृ. 01
4. कुसुम अंसल, तापसी, पृ. 22
5. वही, पृ. 25
6. कुसुम अंसल, इकतीस कहानियाँ, अंधी यात्रा, पृ. 136
7. सं. अनिल कुमार, कुसुम अंसल रचनावली, भाग 5, उस जैसा, पृ. 179
8. कुसुम अंसल, संकलित कहानियाँ, गुलाबी मुस्कान, पृ. 138

लॉरेंस लेम्यूक्स :

अंगमहाजनपद गौरवगाथा

लक्ष्मीनारायण मधुलक्ष्मी
भागलपुर
मो. 9006903826

अंग महाजनपद कृपा निधान
सब मिली गावै वंदन गान
अंग जनपद अंगिका महान
सब मिली करै छि गुणगान

बसुन्धरा वन–उपवन शोभे
गंगा कोसी पावन धाम
अंगमहाजनपद कृपानिधान
सब मिली गावै वंदन गान

मधु–कैटभ वध, हरिमधुसूदन
लक्ष्मी नारायण पापहरनी धाम
अंगजनपद अंगिका महान
सब मिली करै छि गुणगान

समुन्द्र मंथन मंदराचल मथनी
चौदह रत्न 'श्री' अमृत धाम
अंगमहाजनपद कृपानिधान
सब मिली गावै वंदन गान

द्वादश ज्योतिर्लिंग वैद्यनाथ
बासुकीनाथ सिंहेश्वर धाम
अंगजनपद अंगिका महान
सब मिली करै छि गुणगान

अजगैबीनाथ उत्तरवाहिनी गंगा
शहबाजिया पीर बटेश्वर धाम
अंगमहाजन पद कृपानिधान
सब मिली गावै वंदन गान

बासूपूज्य अंग दानवीर कर्ण
विक्रमशिला शिक्षण संस्थान
अंग जनपद अंगिका महान
सब मिली करै छि गुणगान

कहोल मुनि शृंगीऋषि आश्रम
जाह्नवी मुनि महर्षि मँहीं धाम
अंग महाजनपद कृपानिधान
सब मिली गावै वंदन गान

शिव शक्ति दुर्गा महाकाली
सती बिहुला चम्पापुर धाम
अंगजनपद अंगिका महान
सब मिली करै छि गुणगान

चान्दन गेरुआ गण्डक कमला
जठौरनाथ शिव अशोक धाम
अंग महाजनपद कृपानिधान
सब मिली गावै वन्दन गान।

अंग महाजनपद गौरव गाथा
मधुलक्ष्मी गावै गौरव गान
कोटि–कोटि अंग भाषाभाषी
अंगिका में बसलै सब केरो प्राण।

आलेख

वास्तविक विजेता वही है जो दैवी लक्ष्यों को भी समझे

सीताराम गुप्ता
ए.डी.–106–सी, पीतमपुरा
दिल्ली–110034
9555622323

हम सबके कुछ सपने होते हैं, जिन्हें साकार करने के लिए हम कोई कसर नहीं रख छोड़ते। पहले हम अपना लक्ष्य निर्धारित करते हैं और उसे पाने के लिए जी–जान से जुट जाते हैं। हम जैसे–जैसे अपने लक्ष्य को पाने के लिए आगे बढ़ते हैं हमारे प्रयास और अधिक तेज़ हो जाते हैं। लक्ष्य के अत्यधिक निकट पहुँचने पर हमें अपने लक्ष्य के अतिरिक्त और कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ता, यह स्वाभाविक ही है। सफलता का मूल मंत्र भी यही है। ओलंपिक खेलों को ही लीजिए। दशकों तक कठिन परिश्रम करने के बाद ही कोई खिलाड़ी पदक हासिल करने के लिए आगे आ पाता है। वर्ष 1988 में सियोल में आयोजित ओलंपिक मुकाबलों में नौकायन की एकल प्रतिस्पर्धा में भाग लेने के लिए कनाडा के लॉरेंस लेम्यूक्स एक दशक से भी अधिक समय से कठोर प्रशिक्षण ले रहे थे और निरंतर कठिन अभ्यास कर रहे थे।

आखिर वो घड़ी आ पहुँची जब लॉरेंस लेम्यूक्स का सपना साकार होने में थोड़ा सा ही समय शेष रह गया था। लॉरेंस लेम्यूक्स के गोल्ड मेडल जीतने की प्रबल संभावना थी, लेकिन जैसे ही प्रतिस्पर्धा प्रारंभ हुई, मौसम ने अचानक रंग बदलना शुरू कर दिया। तेज़ हवाएँ चलने लगीं और उनके कारण शांत समुद्र में ऊँची–ऊँची लहरें उठने लगीं। ऐसे में कोई भी हतोत्साहित हो सकता था, लेकिन लॉरेंस लेम्यूक्स ने हार नहीं मानी और ऊँची–ऊँची लहरों के बीच निरंतर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने लगे। अत्यंत चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों के बावजूद लॉरेंस लेम्यूक्स ने शुरुआती बढ़त हासिल कर ली। उनका गोल्ड मेडल लगभग निश्चित हो गया था, लेकिन ये क्या?विषम परिस्थितियों के कारण उनसे एक चूक हो गई।

ऊँची–ऊँची लहरों के कारण दिशा बतलानेवाले संकेतों को देखना असंभव हो गया और लॉरेंस लेम्यूक्स एक संकेत चूककर आगे बढ़ गए। लॉरेंस लेम्यूक्स को आगे बढ़ने से पहले उस चूके हुए संकेत तक आने के लिए विवश होना पड़ा और वहाँ से पुनः रेस शुरू करनी पड़ी। इन सबमें समय की कितनी बर्बादी हुई होगी और इसके कारण पदक हासिल करने के नज़दीक पहुँचना कितना मुश्किल हो गया होगा, अनुमान लगाना संभव नहीं। इस चूक और अन्य कठिनाइयों के बावजूद लॉरेंस लेम्यूक्स शानदार प्रदर्शन करते हुए दूसरे स्थान तक जा पहुँचे। उन्हें रजत पदक मिलने की पूरी संभावना नज़र आ रही थी और वे तेज़ी से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहे थे। उनका उत्साह देखने लायक था।

जब लॉरेंस लेम्यूक्स तेज़ी से अपनी नाव चलाते हुए सही दिशा में आगे बढ़ रहे थे, तो उन्होंने देखा कि बीच समुद्र में सिंगापुर के नाविकों की एक नाव उलटी पड़ी है। एक आदमी जो बुरी तरह से घायल हो गया था, पलटी हुई नाव की पैंदी को किसी तरह से जकड़े हुए पड़ा था। नाव से कुछ ही दूरी पर एक अन्य व्यक्ति बहता हुआ जा रहा था। समुद्र की स्थिति अब और भी विकराल हो चुकी थी। लॉरेंस लेम्यूक्स एक अत्यंत अनुभवी नाविक थे। उन्होंने अनुमान लगाया कि सुरक्षा नौका अथवा बचाव दल के आने तक ये बहता हुआ व्यक्ति बहते–बहते दूर चला जाएगा और उलटी हुई नाव के ऊपर पड़ा व्यक्ति भी जल्दी ही समुद्र की विशाल लहरों से टकराकर नीचे गिर पड़ेगा और बहने लगेगा। स्थिति ऐसी थी कि तत्क्षण सहायता न मिलने पर दोनों का ही बच पाना असंभव प्रतीत हो रहा था।

लॉरेंस लेम्यूक्स के सामने दो विकल्प थे। पहला विकल्प तो ये था कि लॉरेंस लेम्यूक्स इस दुर्घटनाग्रस्त नाव के चालकों को नज़रंदाज़ करके अपना पूरा ध्यान केवल अपने लक्ष्य को पाने के लिए अपनी नौका और रेस पर केंद्रित करते, जिसके लिए उसने वर्षों तक कड़ा परिश्रम किया था। यह स्वाभाविक भी था और इसमें असंख्य संभावनाएँ और आर्थिक हित भी निहित थे। लेम्यूक्स के समक्ष दूसरा विकल्प था दुर्घटनाग्रस्त नाव के चालकों की मदद करना। उसे याद आया कि समुद्र में उतरनेवाले हर व्यक्ति का महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है सबसे पहले संकटग्रस्त व्यक्तियों का जीवन बचाना। यद्यपि उसका मुख्य लक्ष्य किसी भी क़ीमत पर प्रतिस्पर्धा जीतना था, जिसके लिए उसने दिन–रात कठोर अभ्यास किया था और जिसके लिए उसके देशवासी उत्सुकतापूर्वक उसके विजयी होने की प्रतीक्षा कर रहे थे, लेकिन लॉरेंस लेम्यूक्स ने बिना किसी हिचकिचाहट के फ़ौरन अपनी नाव उस दिशा में मोड़ दी, जिधर उलटी हुई दुर्घटनाग्रस्त नाव समुद्र की विकराल लहरों में हिचकोले खा रही थी।

लेम्यूक्स ने बिना देर किए दोनों नाविकों को एक–एक करके अपनी नाव में खींच लिया और तबतक वहीं इंतज़ार किया, जबतक कि कोरिया की नौसेना आकर उन्हें सुरक्षित निकाल नहीं ले गई। इसके बाद लॉरेंस लेम्यूक्स ने पुनः अपनी रेस शुरू की, लेकिन तबतक बहुत देर हो चुकी थी। मेडल उनके हाथ से फिसल चुका था। लॉरेंस लेम्यूक्स इस प्रतिस्पर्धा में बाईसवें स्थान पर आए। इसमें संदेह नहीं कि यदि वो अपने मूल लक्ष्य से विचलित नहीं होते तो निश्चित रूप से पदक हासिल करते। लॉरेंस लेम्यूक्स ने अपने जीवन की एकमात्र महान उपलब्धि को अपने हाथ से यूँ ही क्यों फिसल जाने दिया?इसका सीधा–सा उत्तर है लॉरेंस लेम्यूक्स के जीवन मूल्य। लॉरेंस लेम्यूक्स के जीवन मूल्य इस तथ्य पर निर्भर नहीं थे कि विजेता होने के लिए ओलंपिक मेडल प्राप्त करना ही एकमात्र विकल्प है। लॉरेंस लेम्यूक्स ने अपने जीवन में भौतिक उपलब्धियों की बजाय उदात्त जीवन मूल्यों को महत्त्व दिया। यह जीवन मूल्य था हर हाल में दूसरों की मदद अथवा करुणा का भाव।

अपने करुणा के उदात्त भाव की वजह से लॉरेंस लेम्यूक्स दो व्यक्तियों को मृत्यु के मुख में जाते देख व्यथित हो उठे। इस व्यथा ने लेम्यूक्स को उनकी मदद करने की प्रेरणा दी और उनकी मदद से वे जीवित बच सके। लॉरेंस लेम्यूक्स के जीवन में व्याप्त उदात्त जीवन मूल्यों के कारण उसकी प्राथमिकता बदल गई। लॉरेंस लेम्यूक्स को मेडल जीतने की बजाय किसी की जान बचाना अधिक महत्त्वपूर्ण लगा। उसने यही किया भी। लोग ऐसी स्थिति में प्रायः द्वन्द्व में फँस जाते हैं और सही निर्णय नहीं ले पाते। अनिर्णय की स्थिति में कई बार दोनों ही स्थितियाँ बेकाबू हो जाती हैं अथवा हाथ से निकल जाती हैं, लेकिन लॉरेंस लेम्यूक्स ने ऐसा नहीं होने दिया। लॉरेंस लेम्यूक्स ने तत्क्षण निर्णय लेकर उसे क्रियान्वित कर डाला।

ओलंपिक के इतिहास में असंख्य लोगों ने मेडल हासिल किए हैं। कई खिलाड़ियों ने तो कई सालों तक लगातार कई–कई मेडल भी हासिल किए हैं। कई मेडल विजेता अपने अच्छे प्रदर्शन और अपनी अन्य विशिष्टताओं के कारण चर्चित भी कम नहीं हुए लेकिन मेडल न मिलने पर भी जो सम्मान लॉरेंस लेम्यूक्स को मिला, वह अद्वितीय है। लॉरेंस लेम्यूक्स को प्रतिस्पर्धा में तो कोई पदक नहीं मिल सका, लेकिन अंतर्राष्ट्रीय ओलंपिक कमेटी द्वारा लॉरेंस लेम्यूक्स को उनके साहस, आत्म–त्याग और खेल भावना के लिए 'पियरे डे कोबेर्टिन पदक प्रदान किया। बाद में ये पूछने पर कि क्या ओलंपिक मेडल खोने

पर उन्हें कभी अफसोस भी हुआ तो लॉरेंस लेम्यूक्स ने कहा कि यदि उनके जीवन में दोबारा ऐसी स्थिति आती है, तो वे हर हाल में उसे दोहराना पसंद करेंगे।

हमारे जीवन में दो तरह के लक्ष्य होते हैं। एक वे लक्ष्य होते हैं, जिन्हें हम स्वयं निर्धारित करते हैं और दूसरे वे लक्ष्य होते हैं, जिन्हें दैवी इच्छा कह सकते हैं। दोनों का ही जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। हमारे जीवन में भौतिक लक्ष्य भी हों और उन्हें पाने के लिए सदैव प्रयासरत रहें, लेकिन जीवन में जो दैवी लक्ष्य होते हैं, उनकी ओर ध्यान देना भी अनिवार्य है। दोनों की ओर ध्यान देकर ही हम जीवन में संतुलन स्थापित कर वास्तविक विजेता बन सकते हैं। सच किसी का जीवन बचाने से अच्छा दैवी लक्ष्य हो ही नहीं सकता। लॉरेंस लेम्यूक्स की करुणा की भावना व वास्तविक मदद ने उसे अपने देश के लोगों के दिलों का ही नहीं दुनिया के लोगों के दिलों का सम्राट बना दिया।

कविताएँ

रोहित प्रसाद पथिक
आसनसोल, पश्चिम बंगाल
मो.–8101303434

मानवता के स्वर मंद हैं

चल रहा है बदलाव का डगर
जल रहा है मानव
भूमि अधिग्रहण है मेरा
सुबह की रोटी की खोज में है माँ
गाँव के लोगों में है खेती की उदासी
फिर भी मैं सोया हूँ
अपने अन्तर्मन के मखमले चादर में
चारो तरफ हैं ना जाने अफरा–तफरी
शाश्वत है एक सम्राट्
प्रजा भी खामोश है किसी दरवाजे पर
सूरज की शातिर किरणों ने इशारा भी किया मुझे
लेकिन प्रतिवाद करना नहीं आता है
क्या क्षत्रिय हो जाने में भलाई है
या शान्त रहूँ एक पहाड़ की तरह
समुद्र के किनारे वो सीप आते हैं
अन्तर कोरस की खबरें साथ लाते हैं
आज भी इंतजार में हैं एक गाँव की
कब वह शहर बनेगा
भाग खड़े होते हैं हमारे जीवन में
एक मीडिया जो उग्र है अपने बर्ताव से
हवाओं में प्रकाशित हैं विद्रोह का संवाद
सभी जन के कानों में सनसनी फैल गई है
हाथों में लाठी लिए फेसबुक पर कविताएँ हैं
वहाँ बैठे लोग मुस्कुराते हैं हमारे जीवन पर
परिचय पूछ रहे हैं हमारा
मैं जानता हूँ कि आप मुझे जानते हैं
एक ईश्वर की तरह जैसे आप मानते हैं अल्लाह
मैं भी चला जाता हूँ अपने मन के मध्य
जहाँ हैं समानता और मानवता की पहचान
फिर भी मैं सोया हूँ
जाग रहा है एक आँसू विहीन समाज
जिसमें हैं हम आप और वो
जो स्वयं उदघोष करते हैं हमारे जीवन में
निर्मल है हमारा समाज
क्यों दूषित कर रहें हैं
बदलाव है क्या
मैं नहीं जानता हूँ
असंख्य लोगों के मौत का मतलब है बदलाव
या शरणार्थी होने के अकल्पनीय
खूबसूरती का अर्थ है बदलाव
मुझे बताओ मैं जानना चाहता हूँ
विरोध हो रहा है मानवता की सुगंध का
जो हम ही मिटा रहे हैं आपस में लड़कर
सँभल जाओ और अपने में लौट आओ
आओ उस धरा पर जहाँ
मानवता और मानवतावादी विचार धारा हो
मुझे ऐसा क्यों लगता है कि
आज मानवता के स्वर मंद हैं!

2. एक देश मेरे अंदर

नमस्कार! उन्हें जो उग्र है
अपने आप को ठग कर
बेहद खूबसूरत है एक दिन
जिसने अब के सवालों के रुख ही बदल दिए
डगमगाती है यह दुनिया फूलों के भार से
जिसमें नजरूल के शब्द हैं
मोरा एक वृन्ते दूटी कुसुम हिन्दू–मुसलमान
मुस्लिम ताहार नयनमणि हिन्दू ताहार प्राण
ना जाने किस गर्दिश में खो गये हैं!

नमस्कार! उन्हें जो लोग
आज भी इंतजार में हैं एक
सकारात्मक सोच के लिए
जो अपने प्रिय कवि रवीन्द्रनाथ को खोज रहें हैं 'गीतांजलि' में
लेकिन अब भी वह कविता शान्त हो विचारों के गलियारे में
भाग खड़े होते हैं कायर इंसान
आज भी...।
अपने आप को आईनों में देखकर
पता पूछ रहे हैं एक सरकार का
कहते हैं वे अच्छा दिसंबर आ गया है
जिसमें हैं एक बड़ा दिन और कई हत्याएँ
जस्ट आई आस्क कहनेवाले कुछ ज्यादा ही व्यस्त हैं
इम्तिहान दे रहा है भारत और भारत के लोग
रिजल्ट का हार्दिक स्वागत है.
बेचारे लोग मुस्कुराते हैं आज भी
बिना अनुमति लिए
हिंदुस्तान है मेरे अंदर
जैसे विराजमान हैं हृदय में श्री राम
अब एकता और समानता के लोग कहाँ है
शायद विचलित हो उठे हैं अपने कथनों से
मैं चीखकर कहता हूँ
एक देश मेरे अंदर है
जहाँ सिर्फ समानता और एकता के फूल खिलते हैं

आलेख

राष्ट्रभाषा हिन्दी की विकास यात्रा

आलोक भारती
जयनगर, मधुबनी
मो.–8292350609

हिन्दी का उद्‌भवकाल 5 से 7 शताब्दी के मध्य का माना जाता है। शासनकाल में भी आम बोल–चाल की संपर्क भाषा के रूप में उर्दू–फारसी मिश्रित हिन्दी का व्यापक विस्तार था।

मध्यकालीन शासन व्यवस्था में चर्चित विद्वान ब्लॉख मैन ने सन् 1871 ई. के कोलकाता रिव्यू में लिखा था–'माल गुजारी इकट्ठा करना व जागीरों का प्रबंध करना उस समय हिन्दुओं के हाथ में था। इसलिए सर्व–साधारण के सारे हिसाब किताब हिन्दी में रखे जाते थे। यहाँ तक कि सम्राट अकबर के शासनकाल के मध्य तक सभी सरकारी कागजात हिन्दी में रखे जाते हैं।

हिन्दी साहित्य को एक अहम मुकाम तक पहुँचाने में देवकी नंदन खत्री का नाम सबसे पहले आता है। वे अपनी एक ही पुस्तक 'चंद्रकांता संतति' से खासे चर्चित हो गये। कहा जाता है कि 'चन्द्रकांता संतति' पढ़ने के लिए लोग हिंदी सीखा करते थे। यानी हिन्दी सीखने के लिए ही लोग 'चंद्रकांता संतति' पढ़ते थे।

देश उस समय छोटी रियासतों एवं रजवाड़ों में बँटा हुआ था। दस, पाँच कोस के फासले पर पानी और वाणी बदल जाती थी, किन्तु उन बोलियों में हिन्दी का पुट तो रहता ही था। इस संदर्भ में एक रोचक प्रसंग प्रस्तुत है–

सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण के समय रात में जब भारतीय सेना में असंख्य मशालें जलती देखीं तो बरबस उनके मुँह से निकला–'इतनी मशालों वाली सेना पर विजय पाना कठिन है।

इसपर उनके सेनापति ने कहा–'हुजूर! ये सेना की मशालें नहीं, ये तो हिन्दुओं के अलग–अलग चूल्हे जल रहे हैं। हिन्दू लोग एक–दूसरे के हाथ का पका खाना नहीं खाते।' फिर सिकंदर कह उठा–'तब तो इन्हें जीतना आसान होगा।'

कमोबेस यही स्थिति आज भी है। हर कोई अपने क्षेत्र की भाषा को राष्ट्रीय विस्तार की भाषा बनाना चाह रहा है। आंचलिक भाषा का मुद्दा देश में रोज सिर उठा रहा है। यह क्षेत्रीय संकीर्णता देश को जोड़ने की नहीं तोड़ने का काम कर रही है। अंचल, धर्म, भाषा, पानी–ये सारे बँटवारे, संकीर्ण मानसिकता स्वार्थ और राजनीति से प्रेरित प्रतीत होती हैं। हवा, पानी, जंगल, पहाड़, धरती किसी भाषा विशेष के मोहताज नहीं। इनकी कोई सीमा निश्चित नहीं। ये सदा अपने स्थान पर यथावत् रहते हैं। जबकि मनुष्य इनके लिए लड़ता–मरता है। खुद भी मरता है और दूसरों को भी मारता है।

हम यह नहीं कहते कि क्षेत्रीय भाषा नहीं होनी चाहिए। होनी चाहिए, मगर सम्मानपूर्ण ढंग से, हिन्दी की अवहेलना कर नहीं। चाहे वह प्रादेशिक व आंचलिक कोई भी भाषा क्यों न हो। इन भाषाओं के होते हुए भी हम हिन्दी का प्रयोग संपर्क भाषा के रूप में कर सकते हैं।

गौरतलब है कि सूचना प्राद्योगिकी जगत् के बिल गेट्स हिन्दी की सम्प्रेषणीयता पर मुग्ध है। उनका मानना है कि हिन्दी जितनी शक्तिशाली है, उतनी असरदार भी। हमारी सोच है कि विदेशों में प्रवेश का माध्यम अंग्रेजी ही है, जो सरासर गलत और भ्रामक है। आज देश के कितने ही कम पढ़े–लिखे नौजवान धंधे की तलाश में दुबई, बैंकॉक, कतर, दोहा (अरब देश) आदि शहरों की यात्रा पर जाते हैं, अपनी टूटी–फूटी हिन्दी की बदौलत। वहाँ उन्हें उनके अनुभव के आधार पर अच्छी पगार पर काम भी मिल जाता है।

वैसे हमारी सरकार भी अब हिन्दी के महत्व को समझने लगी है। विज्ञान, कम्प्यूटर तकनीकी आदि की पुस्तकों का प्रकाशन हिन्दी में करने पर जोर दे रही हैं। देशी–विदेशी कंपनियाँ बाजार की स्थिति को देखते हुए अपने विज्ञापन हिन्दी में दे रही हैं। हिन्दी प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया अंग्रेजी से अधिक लोकप्रिय हो रही हैं। टी.वी. धारावाहिक के प्रसारण से हिन्दी के प्रचार–प्रसार को चार–चाँद लग गये हैं। नेशनल ज्योग्राफी, डिस्कवरी, मोविस, जी.टी.वी., स्टार प्लस, सोनी आदि चैनल भी हिन्दी में प्रसारण कर रहे हैं। योग ऋषि स्वामी रामदेवजी विश्व के प्रायः सभी बड़े देशों में योगविद्या सिखाने के साथ ही भारतीय संस्कृति की पवित्रता व महत्ता दुनिया को बताते हैं, जो अत्यन्त प्रशंसनीय है। यह सब वे हिन्दी में ही करते हैं।

सम्राट अकबर खुद भी हिन्दी में कविता लिखा करते थे। यह परंपरा जहाँगीर, औरंगजेब एवं अंतिम मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर तक कायम रही। ऐसे मुस्लिम साहित्यकारों, कवियों की संख्या भी सैकड़ों में है, जो फारसी व अरबी के विद्वान होते हुए भी हिन्दी में रचनात्मक लेखन करते रहें। जिनमें कुछ उल्लेखनीय नाम इस प्रकार हैं–कुतबन, मंझन, जायसी, उसमान, शेखनबी, कासिमशाह, नूर मोहम्मद, कबीर, अर्ब्दूर रहीम खानखाना, रसखान आदि। इनकी रचनाएँ प्रेमाख्यान काव्यों पर आधारित हैं। इन सबमें दोहा, चौपाई आदि का अनुसरण किया गया है। इन काव्यों के नाम भी नायिकाओं के नाम पर रखे गये हैं। यथा पद्‌मावत, चित्रावली, मृगावती, मधुमालती, इन्द्रावती आदि। इसी प्रकार शेखनबी ने 'ज्ञानदीप' नामक काव्य ग्रंथ का सृजन किया, तो कासिमशाह की पुस्तक का नाम 'हंस जवाहर' है।

अर्ब्दूर रहीम खानखाना का स्थान भी हिन्दी क्षेत्र में विशिष्ट है। इन्होंने अमीर सुखरो की भाँति हिन्दी की सभी बोलियों व सभी प्रचलित शैलियों में रचनाएँ सृजित की हैं। 'रहीम' के नाम से मशहूर इनका विविध भाषाओं पर इतना अधिकार था कि मन की तरंग में आकर इन्होंने भाषाओं का मिश्रण कर कुछ ऐसी रचनाएँ तैयार कीं, जो उन पाठकों का मनोरंजन करती है, जिन्हें संस्कृत का ज्ञान है। जिनके मशहूर नीतिपरक दोहे सर्वसाधारण को कंठस्थ याद रहते है। दोहों के माध्यम से रहीम ने बड़े ही मार्मिक ढंग से जीवन और जगत् के संबंध में अपनी अनुभूतियों को व्यक्त किया है। प्रस्तुत है एक बानगी–

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न उबरे, मोती मानुष चून।।

वरिष्ठ कवि साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नेतृत्व में लेखकों, पत्रकारों ने हिन्दी आंदोलन को काफी आगे बढ़ाया। सन् 1882 में शिक्षा आयोग के प्रश्न पत्र के उत्तर में भारतेन्दु जी लिखा–'सभी सभ्य देशों की अदालतों में नागरिकों की बोली और लिपि का प्रयोग होता है। यही ऐसा देश है, जहाँ न अदालती भाषा शासकों की भाषा है और न प्रजा की।

वैसे सच यह भी है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित करने का विचार ही सर्वप्रथम अहिन्दी क्षेत्र बंगाल से उत्पन्न हुआ। राष्ट्रभाषा आंदोलन में महात्मा गाँधी, लोकमान्य तिलक, बाबा साहेब कालेलकर, लाला लाजपत राय, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, पुरुषोत्तम दास टंडन, मदन मोहन मालवीय आदि महान हस्तियों का सक्रिय सहयोग रहा। साथ ही समाज सुधार से सम्बद्ध संस्थाएँ क्रमशः आर्य समाज थियोसोफिकल सोसाइटी आदि ने राष्ट्रभाषा आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। हिन्दी प्रचारक संस्थाओं में 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा', हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुजरात विद्यापीठ आदि ने हिन्दी आंदोलन में महती भूमिका निभाई थी।

राष्ट्रभाषा हिन्दी तो एक ऐसा बहता नीर है, जो गंगा के समान पवित्र,

आह्लादमयी व अनूठी धरोहर के समान है जो अनवरत बहती रहती है। सरित–सरिता के समान हिन्दी–अहिंदी भाषी क्षेत्र को एक दूसरे से जोड़ने में सेतु यानी संपर्क भाषा का काम करती हैं। इसका विस्तार देश की सीमा से निकलकर अब व्यापक हो चुका है।

अखण्ड भारत की जडें भी राष्ट्रभाषा हिन्दी से सिंचित होकर ही मजबूती व स्थिरता पा सकती है।इस संदर्भ में पेश हैं कुछ पंक्तियाँ–

एक संस्कार, एक राष्ट्र, एक राष्ट्रभाषा
एकता स्वतंत्र देश की ज्वलन्त है आशा
लाख अंधकार घिरे दामिनी प्रचंड गिरे
एकता अखंड है तो सदैव भाग्य फिरे।

वैसे हमारी सरकार भी कार्यालयों के काम–काज देवनागरी लिपि में करने पर जोर दे रही है।साथ ही सरकार को मिशन एवं निजी स्कूलों, सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में आरंभिक शिक्षा का माध्यम देवनागरी लिपि ही हो, ऐसा दबाव बनाना चाहिए और अब हिन्दी साहित्य व हिन्दी साहित्यकार धन्यवाद के पात्र हैं, जो अनवरत राष्ट्रभाषा की सेवा साधना में लीन है। तमाम साहित्यिक आयोजनों, गोष्ठियों, सभाओं व चर्चाओं के माध्यम से हिन्दी को नई ऊर्जा मिलती रही है। नित नये रूप में वह फलती–फूलती रही है। लोग अनवरत लिख–पढ़ रहे हैं, बोल रहे हैं।सभी को कोटिशः धन्यवाद!

विद्यावाचस्पति आमोद कुमार मिश्र
भागलपुर
9934097221

गीत

मन–शैशव

मन शैशव ममता का प्यासा
जहल जलधि डूबा जाता हूँ
विह्वलता की अन्तहीनता
में निज को खोता जाता हूँ

धरा का वह प्यारा–सा आँगन
स्थितियों का पाषाण बना है
अपनापन का शब्द–शब्द भी
छल–मधुरस के गर ल सना है

माँ तेरे आँचल–पीयूष को
दृष्टि ढूँढ़ती कोना–कोना
स्मृतियों की लोरी में डूबा
मृदु–सुख पल छिण पा जाता हूँ

मुक्त द्वार पर प्रतीक्षित–सी
कहाँ गई युग स्नेहिल आँखें
आशिषों के पूत–मंत्र सम
कर द्वय स्नेहवत्सला पाँखें

पंछी के निश्छल शावक–सा
कातर सुधियाँ कलप रही हैं
मन दौड़ा–दौड़ा थक जाता
व्यथा भार क्या ढो पाता हूँ

नवल उषा की करुणिम किरणें
ममतामय चुम्बन दे जातीं
रजनी की नीलाभ गगन में
चन्द्रप्रभा शिशु–कथा सुनाती

गंधवाहिका बजा सिंजिनी
शैशव–मन दुलरा जाती है
तेरे कर का सांध्यदीप–सा
चौरे पर जलता जाता हूँ।

मन शैशव ममता का प्यारा
जहल–जलधि डूबा जाता हूँ।

कविता

2. भाई कहकर बुलाके तो देखो

भाई कहकर बुला के तो देखो
मन का मिट जाएगा मैल सारा
प्रेम अमरित झरेगा हृदय से
एक दूजे को मिलकर सहारा
हम तो टूटे चले जा रहे हैं
क्या ये पूजा इबादत धरम है
आदमीयत जहाँ मर रही हो
है वो मजहब नहीं बस भरम है
टूटे दिल को मिलाकर तो देखो
क्या शुकूँ पाएगा दिल तुम्हारा
भाई कहकर.....
धर्म को आदमी ने बनाया
आदमी से बड़ा कुछ नहीं है
राह जीवन का सुन्दर बनाता
धर्म नेकी रहम वन्दगी है
मन का मंदिर खुलेगा तुम्हारा

प्रेम अमरित झरेगा हृदयसे
एक दूजे को मिलकर सहारा
भाई कहकर .....
हाथ मेरे तुम्हारे मिले तो
कितने मंदिर ओ मस्जिद बनाए
द्वार गुरु के और गिरिजाघरों के
मिलके हमने ही तो हैं सजाए
दिल से पर्दा हटाकर तो देखो
नूर–ए दिल में मिलेगा तुम्हारा
भाई कहकर बुलाके तो देखो
मैल धुल जाएगा मन का सारा
प्रेम अमरित झरेगा हृदय से
एक दूजे को मिलकर सहारा
धर्म मजहब में झगड़ा नहीं है
सोच में ही हमारी कमी है
खुद सजाए हुए ईंट, पत्थर

आज क्यों मौत की सरजमीं है
मन से कटुता हटाकर तो देखो
सब धरम ही लगेगा तुम्हारा
प्रेम अमरित झरेगा हृदय से
एक दूजे को मिलकर सहारा
भाई कहकर.....
भूमि भारत ये अपना वतन है
धर्म इन्सानियत का चमन है
इसके दर जब भी जो भी है आया
मिल गया बस उसे भी अमन है
सिर उठाकर तिरंगा को देखो
हाथ चूमेगा जनगण तुम्हारा
भाई कहकर बुलाके तो देखो
मैल धुल जाएगा मन का सारा
प्रेम अमरित झरेगा हृदय से
एक दूजे को मिलकर सहारा

कहानी

बेरोजगार

राजा सिंह
कानपुर रोड, लखनऊ
मो0 9415200724

उसकी आँख खुली, तो उसने पाया कि सूर्य उसके ऊपर चढ़ आया है। वह थोड़ी देर पड़ा रहा यद्यपि उसे गर्मी महसूस हो रही थी। उसी समय उसकी माँ छत पर आती दिखाई पड़ी। वह करवट बदलकर माँ की तरफ देखने लगा। माँ उसके पास आ चुकी थी और उसके बालों में प्यार भरा हाथ फेरती हुई बोली–'जाना नहीं है बेटा! 'उसने लेटे ही लेटे माँ की तरफ आँख उठाकर देखा, मानो वह आँखों से ही कहना चाहता हो, जाऊँगा क्यों नहीं?यही तो हमारी दिनचर्या है।

वह माँ के साथ छत से उतर आया। कुल्ला करते हुए उसने देखा, उसकी बहन रेखा उसके कपड़ों पर प्रेस कर रही है। उसका छोटा भाई विमल बड़ी तल्लीनता से उसके जूतों पर पालिश कर रहा था। भाई के माथे पर झुके बाल पालिश करनेवाले हाथों के साथ बड़े लयबद्ध तरीके से झूल रहे थे। उसे साफ–साफ समझ में आ रहा था कि उसे भेजे जाने के लिए लोग कितने लगन से युद्ध–स्तर की तैयारी कर रहे हैं। उसने सोचा उसके घर के लोग उसको ठीकठाक रखने के लिए खुद काफी अस्त–व्यस्त हो गये हैं। वह आँगन में पड़ी खाट पर बैठ गया। तभी उसकी माँ चाय ले आई। चाय पीते हुए वह सोचने लगा, आखिर इन लोगों का उत्साह क्षीण क्यों नहीं होता?अब तो यह कोई नयी बात नहीं है। वह करीब–करीब हर दूसरे–तीसरे दिन इम्पलायमेंट–ऐक्सचेंज नौकरी की खोज में या किसी प्राइवेट फर्म में इंटरव्यू देने और वापस खाली हाथ या आश्वासनों का ढेर लिये घर वापस आ जाता है। हर बार लौटने पर वह यही निश्चय करता है कि वह भविष्य में कभी न तो इम्पलायमेंट ऐक्सचेंज जायगा, न ही और कहीं। परन्तु हर कॉल लेटर पर उसका निर्णय फूस के ढेर की तरह हवा में उड़ जाता है और फिर वह जानी–पहचानी तैयारी के बीच गुजरकर चला जाता है। वह काफी दिनों से महसूस कर रहा था कि उसका उत्साह जाने कब समाप्त हो चुका है। अब वह सिर्फ घर वालों को संतुष्टि के लिए जाता है। घरवाले अब भी उसकी नौकरी लगने की उम्मीद में हैं, जबकि वह नौकरी को स्वप्नों में सोचता है। उसे लगा नौकरी पाना अब उसका दिवास्वप्न भी नहीं रह गया हैं। शुरू–शुरू में जब वह बी.ए. फर्स्ट डिवीजन पास हुआ था, तो वह कितना उत्साह के साथ भरा हुआ था, मिलनेवाली नौकरी के प्रति और उससे सँवरनेवाले जीवन के भी प्रति। उसके घरवाले भी यानी माँ, बहन, भाई व पिताजी सभी के चेहरों पर उसने उस समय एक कल्पना में डूबी, आशावान चमक देखी थी, जो किसी को पारस पत्थर मिलने की कल्पना से होती है। उनके आशावान चेहरों की वह चमक धीरे–धीरे कितनी धूमिल पड़ गई है। वह चमक चाहकर भी वह अभी तक नहीं देख पाया है और शायद भविष्य में भी उसे उम्मीद नजर नहीं आती है; क्योंकि उनकी चमक उसकी नौकरी का इन्तजार कर रही है।

'साहबजादे! नौ बज रहे हैं।' उसके पिताजी पूजा करके उठे थे, आते हुए बोले। यह पिताजी के वाक्यों की तल्खी को काफी गहराई से महसूस करता है। इधर थोड़े दिनों से पिताजी उसके साथ बोलने में व्यंग्य का भी प्रयोग करने लगे हैं। उसके साथ घर में केवल उसके पिताजी ही रूखा बोलते हैं। उसने कुछ नहीं कहा, यद्यपि उसे लगा था कि वह कुछ बोल पड़ेगा। परन्तु वह जानता था कि उसके बोलने से तकरार पैदा हो जायेगी, जिससे उसके जाने का रहा–सहा मूड भी खत्म हो जायेगा। इन हालातों में माँ उसका ही पक्ष लेगी। फिर वह लड़ाई खिसक के माँ–बाप के पास चली जायेगी। वह जानता था बाप का रूखा बोलना किन्हीं मानों में गलत भी नहीं था। उसका बाप रिटायर्ड पोस्ट आफिस क्लर्क जिसे मिडिल पास होने पर ही नौकरी मिल गयी थी, उसका बेटा बी.ए. पास होने पर भी बेकार। उसका बाप जिसके ऊपर बुढ़ापे और दमा ने आक्रमण कर रखा है, कितने अरमानों से उसे पढ़ाया–लिखाया है। रेखा को हाई स्कूल पास करवा के घर में बैठा लिया। वह बेचारी पढ़ने के लिए कितनी उत्सुक थी। कई रोज उसने घर में कोहराम–सा मचा दिया था। उसकी नौकरी मिलना तो दूर रहा, उसका खर्च ही परिवार के अन्य लोगों से काफी ज्यादा है। आखिर बाप परेशानी में बड़बड़ायेगा क्यों नहीं?

वह उठकर नित्य कर्म से निपटने चला गया। नहाकर आया, तो देखा माँ उसके लिए रसोई में नाश्ता बनाकर तैयारकर रही है। उसकी बहन रेखा आँगन को बुहार रही थी। वह अनमने भाव से कपड़ों को पहनने के लिए कमरे के अन्दर चला गया। कपड़े पहनकर आया, तो उसने देखा खाट के पास लोहे का वही छोटा–सा स्टूल रखा है, जिसपर उसके लिए नाश्ता रखा जायेगा। वह खाट पर आकर बैठ गया। उसने स्टूल को अंगुलियों से बजाना शुरू कर दिया, तभी उसकी बहन ने आकर नाश्ता रख दिया। वह जैसे–तैसे दो पराठे ठूँसकर उठ खड़ा हुआ। जूता पहनते वक्त उसने देखा कि उसकी जुराबें उंगलियों के पास फट गयी हैं। उसकी इच्छा हुई कि वह जुराबों को तार–तार करके फेंक दे। परन्तु वह ऐसा नहीं कर सका; क्योंकि वह जानता था कि उसके पास जो चप्पल हैं, वे उसका साथ पता नहीं कब छोड़ दें। ये शायद भगवान को भी न मालूम होगा?उसने बुरी तरह अपने पैरों को जुराबों में ठूँस दिया। उसी वक्त उसकी बहन उसका चमड़े का बैग लेकर खड़ी हो गई। उसके बैग को देखते ही उसके ऊपर एक अजीब सी कोफ्त सवार हो गई। इस बैग के साथ लगा हुआ वह अपने आपको काफी अपमानित महसूस करता हैं। इस बैग से नफरत भी करता है। ज्यों ही वह बैग लेकर घर से बाहर निकलता है, मोहल्ले में जिस–तिसकी नजर उस पर पड़ती है उन आँखों में अपने लिए एक सतही सहानुभूति देखता है–जिसमें लिखा होता है–बेचारा नौकरी के लिए परेशान है। बेचारा शब्द सुनना व महसूस करना दोनों ही उसे काफी खलते हैं। बैग लेकर वह चलने लगा, रेखा उसे दरवाजे तक छोड़ने आयी थी, बोली–'भइया! बेस्ट ऑफ लक' वह पलटकर अनजाने ही मुस्करा पड़ा और फिर आटोमैटिक तरीके से उसके मुँह से निकला–'थैंक यू'।

उसके पैर अपने आप उस बस स्टाप की ओर मुड़ चले, जहाँ से उसे बस पकड़नी थी। उसने पैंट की जेबों में हाथ डाला अपने आप को आश्वस्त करने के लिए कि माँ ने रुपये रखे हैं कि नहीं। उसने रुपये निकाल के देखा तो मुड़े–मुड़े नोट उसकी जेब में पड़े थे। वह कुछ द्रवित हो उठा। माँ बेचारी कितना ख्याल रखती है उसका। उसको कभी भी माँ से रुपये माँगने नहीं पड़ते हैं। अक्सर ही उसके पास चुपके से बीस या तीस रुपयें पहुँच जाते हैं, उसने मन ही मन हिसाब लगाया आठ रुपये इधर के, आठ रुपये उधर के। उधर के बस स्टाप से इम्पलायमेंट ऐक्सचेंज दूर है, रिक्शे से, जाना पड़ेगा पाँच रुपये उसके। इस प्रकार चार रुपये फिर भी बच रहते हैं। ठीक है–चाय–सिगरेट के काम आएँगे। बस स्टाप पहुँचकर उसकी अभ्यस्त आँखें दूर–दूर तक बस की खोज करने लगीं। पूरी की पूरी सड़क विधवा की

सूनी माँग की तरह दिखाई पड़ रही थी। उसे आश्चर्य हुआ रोज की तरह बस स्टाप पर भीड़ नहीं थी। थोड़ी देर बाद पास से गुजरते हुए व्यक्ति से टाइम पूछा। अरे, बाप रे! साढ़े दस बज गये। बस तो आकर चली गई होगी, उसने सोचा। वह काफी निराश हो गया था, उसे अच्छी तरह मालूम था कि दूसरी बस पौने बारह बजे के पहले नहीं आयेगी और उसे साढ़े ग्यारह बजे तक अवश्य पहुँच जाना चाहिये था। उसने रिक्शा करके इम्पलायमेंट एक्सचेंज जाने का निश्चय किया। कोई भी रिक्शा बारह–पन्द्रह से कम में तय नहीं हो रहा था। वह रिक्शावालों के 'नेचर' को अच्छी तरह जानता था, बस निकल जाने पर उनके दाम एकदम से आगे बढ़ जाते हैं। रिक्शेवाले सवारियों की मजबूरी बखूबी जानते हैं।

उसने थोड़ी दूर टहल मारी। उसने देखा कि एक रिक्शेवाला उसी की तरफ आ रहा था। वह मुँह फेर कर खड़ा हो गया, मानो उसे रिक्शे की कोई खास जरूरत न हो। 'कहाँ जाना है बाबू जी!' रिक्शेवाले ने कहा। उसने पलटकर देखा, रिक्शेवाले की आँखों में कीचड़ था। दुबला–पतला शरीर बूढ़ी हो गई काया को अपने फटे कपड़ों से असफल ढकने की कोशिश करता हुआ। वह एकदम दयनीयता की स्पष्ट छाप उस पर छोड़ रहा था। एक बार उसका मन हुआ कि इस रिक्शेवाले से बात न की जाये। अन्य कोई मौका होता, तो अवश्य उससें मुखातिब न होता; परन्तु आज वह काफी मजबूर था और जब रिक्शेवाले ने वहाँ चलने के लिए दस रुपये माँगे, तो वह तुरन्त गद्दी पर बैठ गया। थोड़ी दूर चलने के बाद एहसास हुआ कि रिक्शा भी अपने ड्राइवर की तरह कृशकाय है। उसने महसूस किया कि अगर रिक्शा इसी रफ्तार से चलता रहा, तो वह समय से नहीं पहुँच पायेगा। वह अपने भीतर झुंझलाहट महसूस करने लगा। जब उससे नहीं रहा गया, तो बोला–'अरे यार! जरा जल्दी चलाओ।' रिक्शेवाले ने मुँह से कोई जबाब नहीं दिया था, अलबत्ता रिक्शे की गति कुछ बढ़ती हुई अवश्य उसे महसूस हुई थी। उसे कुछ सन्तोष हुआ। उसने रिक्शे से ध्यान हटाकर इधर–उधर देखना शुरू कर दिया। फिर उसकी नजर रिक्शे से संघर्ष करते हुए रिक्शेवाले पर पड़ी। पसीने से सारे कपड़े उसके गीले हो गये थे तथा उसका शरीर मेहनत करते हुए काफी हॉफ रहा था। उसे रिक्शे वाले पर कुछ दया आई। कुछ देर बाद उसने महसूस किया कि कुछ धीमी हो गई है। वह खीजता हुआ बोला–'अरे, बुढ़उ! तेज चलाओ न, अगर समय से मैं पहुँच नहीं पाया, तो मेरे रिक्शा करने से क्या फायदा रहा?' रिक्शेवाला भी अब उसके टोकने से काफी परेशान हो गया था। एक तो वह अपने शरीर से परेशान था, दूसरे उसके बार–बार टोकने से खीज उठा था और लगभग झुँझलाकर जवाब दिया– 'चला तो रहे हैं साहब ! कोई मशीन तो बन नहीं जाउँगा। आखिर जितना बूता होगा उसी हिसाब से रिक्शा चलेगा। फिर साला ये रिक्शा भी जर्मन का पुराना है।' वह रिक्शेवाले के जवाब से काफी शर्मिन्दगी महसूस करने लगा था। उसने सोचा मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए कितना अमानवीय हो जाता है उसने निश्चय किया कि अब वह रिक्शेवाले से कुछ भी नहीं कहेगा। रिक्शेवाले ने भी शायद अपने खुद कहे वाक्यों की कठोरता महसूस कर ली थी और उसने अपना गुस्सा रिक्शें पर उतारना शुरू कर दिया था। परिणामस्वरूप रिक्शे की चाल काफी तेज हो गयी थी। फिर उसने रिक्शे को सामान्य गति पर लाते हुए कहा–'क्या करें साहब! यहाँ की जो नगर महापालिका है, वह इस सड़क को कभी बनवाती ही नहीं। इस सड़क पर तो मोटरकारों की चाल भी काफी कम हो जाती है– फिर ये रिक्शा की बिसात ही क्या है?ऊपर से भगवान भी खूब कृपा कर रहा है, हवा उल्टी दिशा में बह रही है। इसलिए रिक्शे की चाल इतनी धीमी है। 'वह काफी गहराई से महसूस कर रहा था रिक्शे वाले की मजबूरी को।

रिक्शे से उतरकर वह काफी लम्बे–लम्बे डग भरता हुआ दस नम्बर के कमरे में घुस गया था। उसने पाया अधिकारी के टेबुल घेरे तीन–चार लड़के खड़े थे। अधिकारी कुछ गरम स्वर में उनसे कह रहा था–'तुमलोगों को हरदम यही धुन लगी रहती है कि भेज दो। जब भेजते हैं तो सक्सेज नहीं हो पाते हैं।' फिर जरा नरम स्वर में बोला–स्टेनों का तुमलोगों ने रजिस्ट्रेशन करवा दिया, फिर निश्चित हो गये। ऐसा नहीं करना चाहिये, रजिस्ट्रेशन के बाद प्रैक्टिस भी करते रहना चाहिये। अभी पिछली दफा तुम्हें उस बैंक में भेजा था, कोई भी सफल नहीं हो पाया। मैं गलत तो नहीं कह रहा हूँ?' 'नो सर! सब लड़के एक साथ बोले। उनकी गर्दन झुकी हुई थी व उनके चेहरे लतियाए हुए लग रहे थे। वह उनकी मजबूरियाँ काफी गहराई से समझ रहा था। वह जानता था बेचारों ने पता नहीं, किन–किन मुसीबतों से इन्होंने टाइप शार्टहैंड सीखी होगी, फिर उसके बाद रजिस्ट्रेशन का चक्कर पार किया होगा। अब प्रैक्टिस कैसे करें?उसके लिए रुपयों की जरूरत होती है और बेचारों के पास पैसा कहाँ?

उसने देखा लड़के लोग मेज छोड़कर दरवाजे से एक–एक करके शान्ति से निकल गये। वह धीरे से अधिकारी के टेबुल के पास बढ़ आया था। अधिकारी, जो गम्भीरतापूर्वक कागजों का निरीक्षण कर रहा था, उसने गर्दन उठाकर प्रश्नवाचक तरीके से उसे घूरा। 'सर आपने उस प्राइवेट फर्म में बुलाने के लिए भेजा था। इन शब्दों को बोलने में ही वह काफी हक्ला गया था। मिस्टर घड़ी देख रहे हैं?' उसने अपनी कलाई की घड़ी आगे करके दिखलाई, फिर बोला–'साढ़े बारह बज रहे हैं,' आपको ग्यारह बजे बुलाया गया था। मैंने दस–बारह लड़कों को भेज दिया। 'क्या करें सर! बस छूट गयी थी, इसलिये देर हो गई। अब भी सर अगर आप आर्डर इशू कर दें तो काम बन जायेगा। 'सर! आप तो मेरी कन्डीशन से पूरी तरह वाकिफ हैं।' यह कहते हुये उसके चेहरे पर सम्पूर्ण दीनता हृदय की उभर आयी थी। 'अब तो कुछ नहीं हो सकता, मैं मजबूर हूँ।' इस तरह अधिकारी ने अपना दो टूक फैसला सुना दिया था और अपने कागजों में फिर खो गया था। फिर भी वह थोड़ी देर टेबुल के पास खड़ा रहा। उसने सोचा एक बार फिर रिक्वेस्ट की जाये; परन्तु उसकी हिम्मत न पड़ी । टेबुल छोड़ते वक्त वह काफी रूआँसा हो गया था। बरामदा पार करते उसे अपने कदम बेड़ियों से जुड़े हुए लग रहे थे। उसे लगा कि वह एक कदम नहीं चल पायेगा। वह सोचने लगा, एक पोस्ट थी, जिसमें दस–बारह लड़के गये हैं। फिर इनमें का एक भी शायद सलेक्शन न हो?ये प्राइवेट कम्पनियोंवाले बड़े हरामी होते हैं, सब साले पहले से ही सलेक्शन कर लेते हैं। सिर्फ ढोंग रचते हैं इम्पलायमेंट से लड़के बुलाने का। यह सोचकर उसे वहाँ न भेजे जा सकने की असफलता का अहसास काफी कम हुआ।

वह विचारमग्न बाहर के गेट की सीढ़ियाँ उतर ही रहा था कि उसके कन्धें पर किसी ने हाथ रख दिया। उसने बड़ी उखड़ी निगाहों से हाथ रखनेवाले को देखा, वह खड़ा–खड़ा मुस्करा रहा था। एक ऐसी हँसी, जो एक आहत को देखकर दूसरे आहत को होती है। उसने बड़ी उदासीनता से उसके हाथ अपने कन्धों से उतारे और बिना एक भी शब्द बोले आगे की ओर बढ़ गया था। वह उसे टाल देना चाहता था और इसमें कामयाब भी हुआ। उस व्यक्ति ने फिर उसे नहीं टोका। वह व्यक्ति बेकारी के मामले में उससे काफी सीनियर था और बेकारी के विषय में उसके लेक्चर को सुन करके, जो वह अक्सर मिल जाने पर छोड़ दिया करता था, पूरी तरह से अपने को हताश नहीं करना चाहता था। उस व्यक्ति की बातों में देश, समाज, व्यवस्था व जीवन के प्रति जो निराशावादी विचार थे, वह किसी भी संघर्षशील नवयुवक को पूरी तरह तोड़ देने के लिए काफी थे। यद्यपि सही मायनों में संघर्षशील वह

भी नहीं था, फिर भी घरवालों की वजह से वह संघर्ष कर रहा था, जिसके कारण आशा की कोई न कोई किरण उसके अन्दर अवश्य पड़ी थी, जो उसे प्रेरणा देती थी। इस कारण वह उससे ज्यादा लगाव चाहकर भी नहीं रखता था। उसे आश्चर्य होता था यह देखकर कि इस व्यक्ति ने अभी तक आत्महत्या क्यों नहीं की?कहीं उसके भीतर भी कोई आशा की ज्योति तो नहीं जल रही है?जो उसे आत्महत्या से विरत किये है। उसे वह पल याद आया, जब वह पहले पहल रजिस्ट्रेशन करवाने आया था, तो यही व्यक्ति उसे मिला था। रूखे–रूखे से बाल, दाढ़ी बड़ी हुई, आँखें गड्ढों में धँसी हुई, साफ बिना प्रेस की कमीज व पेंट तथा जर्जर होती चप्पलें उसकी पहचान थी। उसे देखकर कोई दूर से ही कह सकता था कि वह बेरोजगार है और वही क्यों?करीब–करीब हर बेरोजगार की यही तस्वीर होती है, कुछ फेर बदल के। उस समय वह व्यक्ति नोटिस बोर्ड में लगे नये वांटेड कालम पढ़ रहा था। उसने रजिस्ट्रेशन ऑफिस का उस समय उससे पता पूछा था। फिर दोनों की अक्सर मुलाकातें हो जाया करती थीं; क्योंकि दोनों का एक ही मिशन था। उसे महसूस हुआ कि उसने उसके साथ ठीक व्यवहार नहीं किया है। उसने चाहा कि उसे पुकारकर बातचीत की जाय; परन्तु वह कार्यालय के भीतर जा चुका था।

इस समय वह सड़क से मिलनेवाले बाजरे पर चल रहा था। इसके एक ओर खूबसूरत लान बिछा था। उसने सोचा, चलो लॉन में बैठकर कुछ आराम किया जाये। वह लॉन में घुसकर कहीं से एक ईंट उठा लाया, ईंट को उसने तकिये के रूप में इस्तेमाल किया। उसे इस वक्त अपने को होने का एहसास नहीं था। उसके चेहरे पर अवसाद की काली छाया थी। पेड़ों की छाया में लेटा हुआ वह सोच रहा था, किस तरह माँ ने ये तीस रुपये इन्तजाम करके रखे होंगे?वह माँ के रुपयों के इन्तजाम करने से काफी परिचित है। उसकी आँखों में कई दृश्य घूम जाते हैं। इस तरह से कलेजा निकालकर दिये गये रूपयों का इन्तजाम इस रूप में सामने उसके समक्ष पहली बार नहीं आया है। उसने सोचा, आखिर कब तक माँ की आकांक्षाओं के प्रतीक ये रुपये आने–जाने की भेंट चढ़ते रहेंगे?उसे इस कार्यालय की व्यर्थता का अहसास काफी खुले रूप में आज नजर आ रहा था। उसने सोचा कि पता नहीं, इसके जरिये कितनों ने नौकरी पायी है, फिर आखिर उसे क्यों नहीं मिलती?उसे इसका एक कारण नजर आया–आज की सड़ी–गली अर्थव्यवस्था। इसको बदले बिना समाज में आमूल परिवर्तन आना असंभव है, उसने सोचा। उसका दिमाग अब बड़े दायरे में घूमने लगा था। वे काफी हद तक अपने को उत्तेजित महसूस कर रहा था। उसने जबरदस्ती अपने को सोच–विचार से मुक्त किया और उठ बैठा।

अब वह सड़क पर निकल आया था। उसने पाँच रुपये देकर पानी पिया, जिससे उसकी अपनी उत्तेजना कुछ ठंढी पड़ती दिखाई दी। उसे बड़े जोर से सिगरेट की तलब महसूस हुई। वह पान सिगरेट की गुमटी की तरफ बढ़ आया और सिगरेट खरीद कर बड़ी अदा से सामने लगे शीशे में अपना चेहरा देखने लगा। उसे अपना ही चेहरा काफी बदला नजर आ रहा था, चेहरा पूरी तरह से गर्द में समाया हुआ था, होठों पर पपड़ियाँ जमी हुई थीं। उसे अपनी हालत पर बेवजह हँसी निकल आयी। हँसने के कारण उसके होंठ फट गये, जिससे खून निकल आया था। उसने फच् से जमीन में थूक दिया और पानवाले से दो पान भी खरीदकर खा लिये। फिर बड़े साहबी अंदाज से अपने बस स्टाप की ओर रुख किया। उसने जेब में हाथ डालकर देखा कि केवल पाँच रुपये ही बचे थे। उसने एक भद्दी–सी गाली खुद अपने आपको दी कि क्यों उसने बस के लिए पैसा क्यों नहीं रख छोड़े। फिर उसने पैदल ही अपने घर की तरफ मार्च करना शुरू कर दिया था।

घर तक आते–आते शाम हो चुकी थी। इतनी दूर का सफर पैदल तय करने के कारण उसकी टाँगें काफी दुखने लगी थीं। घर पहुचने पर वह बुरी तरह से लस्त हो चुका था। आँगन में खड़ी खाट पर उसने अपने आपको बिलकुल ढीला छोड़ दिया था। थोड़ी देर वो उसी हालत में पड़ा रहा। फिर वह बैठकर जूते उतारने लगा। इसी बीच उसकी बहन आ गई। 'क्या हुआ भइया?' आते ही उसने प्रश्न दागा था। उसका मन हुआ कि बुरी तरह से बहन को झिड़क दें कि होना क्या है, कभी कुछ हुआ है, जो आज ही होगा। परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। उसने सोचा वह तो बेचारी कितनी ललक एवं सहानुभूति से उससे पूछने आयी है और वह उससे ऐसा व्यवहार करेगा, तो उसके दिल को कितनी ठेस पहुँचेगी। उसे अपने झिड़कने के ख्याल आने के कारण काफी ग्लानि हुई। उसने जबरदस्ती अपने चेहरे पर मुस्कराहट लाते हुये कहा–'हम तो भई कर्मयोगी हैं। फल की आशा तो रखते ही नहीं है।' माँ दरवाजे पर खड़ी भाई–बहन का वार्तालाप सुन रही थी। बीच में ही कूद पड़ी और रेखा को डाँटते हुए बोली–'अरे! क्यों बेचारे को परेशान करती हो?' थका–माँदा आया है। सबेरे से कुछ खाया नहीं है। चल पहले खाना परोस, फिर जी भर के बातें कर लेना।' वह बहन की बात को झेल गया था, परन्तु उसे लगा कि माँ की सहानुभूति सह नहीं पायेगा। वह माँ की आखों की तरलता बर्दाश्त नहीं कर पाता है, उसकी इच्छा हुई कि वह माँ के आँचल में सिर छिपाकर फूट–फूटकर रो पड़े और नौकरी न पाने की असमर्थता का अहसास करा दे। परन्तु वह जानता था कि वह ऐसा नहीं कर पायेगा, क्योंकि वह रोकर खुद अपना तो जी हल्का कर लेगा, परन्तु माँ के दुःख को कई गुना बढ़ा देगा और वह माँ को किसी भी हालत में और दुखी नहीं देखना चाहता था। माँ कब पंखा झेलते हुए उसके पास आ गई थी और बड़ी आशा भरी नजरों से देखते हुए पूछा–'बड़ी देर कर दी बेटा!क्या उन लोगों ने इन्टरव्यू में भेजा था?' उसकी इच्छा हुई कि वह माँ को सब सच–सच बता दें कि वह इम्पलायमेंट एक्चेन्ज से पैदल चलकर आया है इसी कारण उसे देर हुई है। परन्तु माँ की आँखों की निराशा वह सह नहीं पायेगा; क्योंकि उस वक्त माँ अपनी निराशा दबाकर खुद उसकी निराशा दूर करने लगेंगी, जो माँ से व्यक्त करते वक्त उसकी आँखों में झलक उठेगी और माँ के सन्तोषदायक वाक्य उसके कलेजे में बिंध जायेंगे जो उस जैसे भावुक व्यक्ति की सहनशीलता के बाहर होंगे। वह जानता था, उसके पैदल आने के विषय में माँ यही कहेगी–'बेटा! भगवान ने चाहा, तो तू एक दिन मोटर में चलेगा।' वह जानता है कि माँ के द्वारा दी गई दिलाशा खुद उससे माँ को सन्तोष देती है। हालाँकि इस दिलाशा देने की व्यर्थता वह काफी हद तक अपने भीतर महसूस करती है, जो उनके लिए निहायत त्रासदायक स्थिति होती है। वह माँ से झूठ बोल गया–'हाँ, माँ!इन्टरव्यू में गया था। उन्होंने कहा है जिनको बुलाना होगा उसे कॉल लेटर भेज देंगे।' माँ पूरी तरह से आश्वस्त हो जाती है और उनके आशावान चेहरे की चमक और ज्यादा हो जाती है।

तभी रेखा खाना लगा देती है। वह हाथ–मुँह धोकर खाने लगता है। खाना खाकर वह फिर मोजे–जूते पहनने लगता है। माँ कहती है–'क्यों, अब कहाँ चल दिया?' वह माँ की तरफ काफी आश्चर्य से देखता है कि क्या माँ! जानती नहीं कि मैं कहाँ जा रहा हूँ?वह सिर नीचे किये जूते में फीते बाँधते हुए कहता है– 'क्यों, क्या ट्यूशन पढ़ाने नहीं जाना है?' माँ निरुपाये हो जाती है, फिर थके स्वर में बोलती है–'अरे, थोड़ी देर आराम कर लेता और आज न जाता तो ठीक रहता।' वह खड़ा हो जाता है, फिर हताश स्वर में बोलता है–'हम गरीबों के भाग्य में आराम कहाँ माँ! फिर आज नहीं जाऊँगा, तो वह बनिया का बच्चा पैसा नहीं काट लेगा?' यह कहकर बिना माँ की प्रतिक्रिया देखे, वह देहलीज पार कर जाता है।

कहानी

उसका लौटना

डॉ. आशा पुष्प
बोकारो इस्पातनगर
मो. 9431739045

भट्.....भट् .....चें.....पें.... विचित्र–सी आवाज करता दो मोटर साइकिल पर सवार चार नौजवान साँप की तरह कभी दायें, कभी बायें, कभी खड़े होकर, कभी बैठकर, तरह–तरह के स्टंट करते, शोर मचाते फूल स्पीड में सड़क पर गाड़ी दौड़ाते चले आ रहे थे कि अचानक पहली गाड़ी का संतुलन बिगड़ा और वे किनारे घास पर टहल रहे बुजुर्ग के ऊपर गिर पड़े। वह भीड़–भाड़वाला इलाका था। बच्चे सड़क की बगल वाले मैदान में खेल रहे थे। स्त्रियाँ बैठकर स्वेटर बुन रही थी, कुछ गप्पें मार रही थीं। जाड़े का मौसम होने के कारण सभी भारी–भरखम गरम कपड़ों में जकड़े मोटे हो रहे थे। लड़के ने स्वयं उठकर बुजुर्ग को उठाया। धूल झाड़कर बोला–'अंकल! लगता तो नहीं है कि आपको बहुत चोट लगी है। थोड़ा बहुत कट–छिल गया है। घर जाकर मरहमपट्टी कर लो। आप को भी तो देखकर चलना चाहिए न! बेकार में मूड खराब कर दिया। वह बड़ी बेहयाई से बड़बड़ाता गाड़ी स्टार्ट कर वैसे ही स्टंट करते फर्राटे से निकल गया। उसके पीछे रुकी हुई दूसरी मोटरसाइकिल, जिसपर उसी के दोस्त बैठे थे, मंथर गति से बढ़ने लगी।

वहाँ टहल रहे लोग तबतक इकट्ठा हो गये थे। कुछ थर–थर काँप रहे उस बूढ़े आदमी को सहारा देकर ले जाने लगे थे। उस आदमी का चेहरा, नाक–मुँह से निकल रहे लहू से भींगा था। उसके मुँह से कुछ आवाज भी नहीं निकल रही थी। लोगों की प्रतिक्रिया उभरने लगी–पीछे के स्ट्रीट के छोकरे हैं सब, गार्जियन के काबू से बाहर। बात–बात पर डंडा, छूरा निकालना तो उनका रोजमर्रा का काम है। इनके मुँह लगना, अपनी सामत बुलाना है। मोटर साइकिल ने रफ्तार पकड़ी ली और चूना भट्ठे के पास अपनी साथी के अड्डे पर पहुँच गया।

दारू की बोतल दाँत से खोलते हुए रघु ने कहा–'साले ये बुड्ढे मरते क्यों नहीं! न जाने कितनी जिंदगी माँगकर लाये हैं भगवान से।

मर जाता तो क्या होता?–श्याम ने मोटर साइकिल स्टैंड पर लगाते हुए पूछा।

उसके बेटे से दोस्ती कर उसके पैसे से ऐश करता–रघु ने बेपरवाही से कहा।

अभी भी तुम वही कर रहे हो–श्यामा ने बुझे स्वर में कहा।

क्या मतलब?उसने तेवर दिखाया।

मतलब यह कि यही बात तुम अपने बाप के बारे में कह सकते हो?

मेरा बाप बड़ा जीवटवाला होशियार आदमी है। रिटायरमेंट के सारे पैसों से गाँव में खेत खरीद लिया और भाई को टैक्सी दिला दी–प्रसन्नता से रघु बोला। गोवा कि तुम्हारी ऐयासी के लिए धन की व्यवस्था हो गयी।

अरे कहाँ?पैसा हाथ ही नहीं लगने देता। किसी तरह चुराकर या अनाज चुराकर बेचकर पैसों का इंतजाम करता हूँ। कभी–कभी तो माँ को बुद्धू बनाकर या इमोशनली ब्लैकमेल कर पैसा झटक लेता हूँ। परन्तु तुम्हारा चेहरा उस बूढ़े को जख्मी देखकर मुरझा क्यों गया?रघु ने तनिक सशंकित होकर पूछा। क्योंकि वह मेरा बाप था।–श्याम ने तुनककर उत्तर दिया।

ओह...हो....बड़ी गलती हो गयी तब तो। थोड़ा और जोर से मारता तो गिर ही जाता। फिर तो हमारी मौज–रघु ने उसे चिढ़ाते हुए कहा।

हाँ, बिरजू की तरह क्यों.....श्याम व्यंग्य से बोला।

उसका नाम मत लो–रघु तिलमिलाया।

क्यों तेरी दुखती रग पर हाथ रख दिया मैंने?इसी चूना भट्ठा पर मजदूरी करते देखा है मैंने। खाँस–खाँसकर मर रहा है। अब तो पहचाना भी नहीं जा रहा है।

तो तू पहचानने गया ही क्यों?मर रहा है, मरने दे। अच्छा है न, मर जाएगा तो उसकी बीबी अपनलोग के काम आएगी। उसने ढिठाई भरी बेशर्मी से कहा।

तू इतना गिरा हुआ हो सकता है?मैंने कभी सोचा नहीं था।

अपने–अपने गिरेवान में झाँककर देखो। केवल हमी चारो नहीं थे, वह स्वयं भी सम्मिलित था–रघु चिल्लाया।

हाँ, था; परन्तु सबसे अधिक उसे तुमने लूटा। ये कपड़े, जूते, होटल, दारू; यहाँ तक कि यह बाइक भी तूने उससे खरीदवाता है। कभी छल किया, कभी धमकाया। मुझे सब मालूम हो गया है। आज उसके पास खाने तक को पैसे नहीं हैं। चल, ये गाड़ी बेच दे और पैसा उसे लौटा दे, ताकि वह अपना इलाज करा सके।

हें....हें...बाइक की ओर नजर भी न डालना। यह मेरी है। तुझसे किसने कह दिया कि मैंने उससे गाड़ी खरीदवाया है।–रघु क्रोध से तिलमिला रहा था।

ज्यादा ताव मत दिखा। जब उसने पेमेंट कर दिया था, तब तुमने गाड़ी का कागज अपने नाम बदलवा लिया था–क्या मैं नहीं जानता?

रघु ने रामपुरी लहराते हुए कहा–मैं जानता था कि तेरे जैसा कमीना कभी भी धोखा दे सकता है, इसीलिए तो अपने नाम करवा लिया था। जितनी दूर दोस्ती निभाना था, निभा ली। पैसा खत्म, दोस्ती गई भीख माँगने। मॉल में खाते समय, कपड़े, जूते, महँगे फोन सबमें वह भी था और तुम सब भी बराबर के हिस्सेदार थे। तब तो मचल–मचल कर मजे ले रहे थे। आज तुम्हारे भीतर का हरिश्चन्द्र जाग गया है। मुझसे भिड़ने की हिम्मत न करना, चीर के रख दूँगा। ज्यादा से ज्यादा क्या होगा मेरा, तीन महीने में जमानत हो जाएगी और फिर केस गया ढढ़े बस्ते में। उपदेश देता है हमको। कच्चा खिलाड़ी समझता है। उसके जैसों को रघु अपने पॉकेट में रखकर चलता है। उसने पूरी बोतल खाली कर दी। तबतक श्याम जा चुका था।

डरे हुए दोनों साथियों ने कहा–हम उसे समझाकर लौटा लाते हैं। नहीं तो कल का दारू कहाँ से आएगा?

कल का?... तुम दोनों हो न?रघु ने छूटते ही कहा। लो, आज तो पी लो। जब उतरेगी, तब साला यहीं आएगा। अभी उसपर देवता सवार है।

परन्तु उसने पी कहाँ है?उसका बोतल तो यहीं पड़ा है। रघु ने कहा–अच्छा है, तुम दोनों हो ना?और बचे हुए बोतल को अपने मुँह में उड़ेलता रहा। तबतक दोनों समझ गये, अब हमारी बारी है। आतंकित हो दबी जुबान से बोले–हम उसे समझाकर लाते हैं।

उसकी माँ नहीं जानती थी कि बिरजू की बरबादी का कारण उसका बेटा भी है। बिरजू, उसके बचपन का दोस्त, दिलेर, हँसमुख और मेहनती। पिता चूना भट्ठा में काम करते थे। माँ के मरने के बाद पिता ने बीस वर्ष के बिरजू की शादी कर दी, ताकि दो गरम रोटियाँ मिल सके। वर्ष भर में ही पोते के रोने की आवाज घर में गूँजने लगी। लेकिन तीन माह बाद ही भट्ठा पर हुए एक्सीडेंट ने बिरजू के पिता को लील लिया। मुआवजे में मिले सात लाख रुपये, नयी जवानी के जोशीले मित्रों का बहकावा, हर बुरे–अच्छे अनुभव प्राप्त कर लेने की ललक

बढ़ा गया। जल्दी से जल्दी राग–रंग के सभी रहस्य जाने लेने की बेतावी में जीवन पीछे छूट गया। चांडाल चौकड़ी जुट गई। तब शुरू हो गया नशा, ऐयासी, विलास और चटोरपन का खेल। रोज शाम की रंगीन, नये–नये अनुभव मन में उछाह भर देती। पर कबतक?

साल गुजरते–गुजरते पैसे खत्म हो गये और चूना भट्ठा में काम करते हुए बिरजू को अपनी नासमझी का पश्चाताप और चूना दोनों घुला–घुलाकर खाने लगा। साँस फूलती रहती, वह खाँसते–खाँसते बेहाल हो जाता। कभी–कभी खून भी आने लगा, तो साथ–साथ काम करनेवाले मजदूर भी आना–कानी करने लगे। ठीकेदार ने काम से हटा दिया। अब तो कई दिनों तक ठीक से चूल्हा भी नहीं जलता। बिन खायी माँ की छाती का दूध सूख गया। बच्चा दिन–रात भूख से रोता रहता। मजदूरों की बस्ती में दूसरों के बच्चे को कोई कितना दूध देता?भूख से हलकान हो वह बच्चा भी कल मर गया। माँ की बक–बक करती कड़ियाँ जोड़कर श्याम महल्ले में पसरे सन्नाटे ओर उसे घूर–घूर कर पीछा करती तीक्ष्ण दृष्टि का रहस्य समझ में आ गया। उसका मन हुआ वह पुक्का फाड़कर रोये।

उसकी आँखों से नींद रूठ गई तथा कोरों से आँसू निरंतर बहते रहे। यह सोचकर कि बिरजू की उस दशा के लिए निश्चय ही वही जिम्मेदार है। उसे रोकना चाहिए था। सारी रात करबट बदलता रहा। जल्दी से जल्दी जीवन के सारे सुखों को भोग लेने की महत्वाकांक्षावाले सारे दृश्य दैत्याकार होकर उसे चिढ़ाने लगे। क्षणभर को भी सो नहीं पाया। रोता हुआ, भूखा बच्चा उससे अपना कसूर जानना चाहता था। उसे लगा, वह गरम पानी के टैंक में जल रहा है।

सबेरा होते ही दुर्व्यसन का साया बढ़ने लगा। किन्तु बिरजू का दुख उस साये से विकराल था। उसे कुछ सूझ नहीं रहा था कि कैसे वह बिरजू की मदद करे?इसी उधेड़बुन में वह चांडाल चौकड़ी तक पहुँच गया थ। सोचा था रघु से बाइक लेकर बेच देगा, ताकि तत्काल मदद हो जाएगी। किन्तु रघु की कुटिलता और नीचता ने उसे जमाने का दस्तूर समझा दिया था। बिना किसी प्रतिक्रिया के आगे बढ़ रहा था। उसका मन बार–बार पूछ रहा था–अब क्या?उसने मोबाईल की रोशनी में देखा। निविड़ अंधकार में विश्वास का दीपक जल उठा। कल से रोज बिरजू के घर चूल्हा जलेगा। बिरजू का इलाज होगा। वह फिर पहले जैसा हो जाएगा। क्योंकि कल से वह रोज भट्ठा पर उसके बदले काम करेगा। वह खुशी–खुशी चल पड़ा। उसने महसूस किया कि दुर्व्यसन के भीतर मरा हुआ संवेदनशील श्याम जी उठा है, अपने मित्र बिरजू के लिए।

कविताएँ

मंजुला उपाध्याय मंजुल
सम्राट चौक पूर्णियाँ
मो. 9431865979

तुम्हारे इश्क के घर में

शीतल, निर्मल, निर्झरणी सी हसीन
हँसी तुम्हारी
उफ! ये गीतों में बहती दीवानगी सी
ये बिन्दास अदाएँ
बातों की जादूगरी
मेरे सपनों सा रंग तुम्हारा
अरमानों का आईना भी तु
तुम्हारा इकरार
तुम्हारे इजहारे मुहब्बत के
ये सब्ज रंग
मेरी देह में उतरने को
उतावली, उदीप्त आदम इच्छाएँ तेरी
जब करने लगती है बेकल मुझे
तब न जानें क्यों
सिमटने लगती हूँ मैं
अपने खोल के भीतर
कछुए की तरह
कहते हैं न
प्यास बुझते ही इंसान और अल्फाज
दोनों बदल जाते हैं
जब की रहना चाहती है
मेरी चाहत ताउम्र
तुम्हारे इश्क वाले घर में।

2. देना एतबार तुम

क्या तुम नहीं चाहते
कि बैठूँ तुम्हारे पास
बखौफ...
मूँद लूँ पलकें
डूब जाऊँ आकंठ
तुम्हारी स्वरलहरी में
कर दूँ अपनी सारी थकान
तुम्हारे हवाले
टिकाकर अपना सर
बेझिझक तुम्हारे कंधों पर
सर्दी–गर्मी ताप बारिश में
चलूँ तुम्हारे संग
डालूँ चारपाई आंगन में
बैठूँ चांदनी के छाँव
सुनूँ सुनाऊँ बचपन की
खट्टी मीठी बातें/याद करूँ
भूली–बिसरी कथाएँ
सावन के झूले
फागुन के रंग
दीवाली के पटाखे लेकर आओ तुम
देखो, अबकी ईद खाली न जाय
माँग रही हूँ 'ईदी' में
दोस्ती, यकीन, एतबार वाला नाता
क्या दे पाओगे तुम?

पुस्तक–समीक्षा

व्यंग्य का लोकतांत्रिक हस्तक्षेप

डॉ0 सुभाषचन्द्र गुप्त
हिन्दी विभाग, करीम सिटी कॉलेज
साकची, जमशेदपुर, (झारखण्ड)
मो0–9430260514

'हा! वसंत' डॉ0 पंकज साहा का सद्यः प्रकाशित व्यंग्य–संग्रह है। अपने समय और समाज की वास्तविकताओं को उजागर करने के लिए किसी लेखक का व्यंग्यकार की भूमिका में उतरना अकारण नहीं होता। जब कोई लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था यों ही नहीं बदलेगी, उस पर सीधा हमला करना होगा, तब शालीनता की औपचारिकताएँ नकार दी जाती हैं और उसकी जगह रचना को व्यवस्था से एक सीधी मुठभेड़ के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। एक लोकतांत्रिक व्यवस्थावाले देश में व्यंग्य की वही भूमिका होती है, जो संसद में विपक्ष की होती है। लोकतंत्र केवल राजनीतिक दर्शन नहीं है, वरन् एक समाज–दर्शन भी है, एक जीवन–पद्धति भी है। लोकतांत्रिक जीवन–मूल्य से कटा हुआ समाज अपनी मनुष्यता और स्वतंत्रता दोनों खो देता है, भले ही वह समाज भौतिक साधनों व सुविधाओं से जितना भी संपन्न क्यों न हो?लब्धप्रतिष्ठ समाजशास्त्री श्यामाचरण दूबे ने लिखा है–''जो समाज अपनी आधारभूत इकाई अर्थात् अपने नागरिकों को जितनी अधिक रचनात्मक एवं मानवीय प्रेरणाएँ देता है, वह समाज उतना ही मानवीय एवं सभ्य बनता है। सभ्य समाज से आशय उन मानवीय एवं सकारात्मक परिस्थितियों की मौजूदगी से है, जिसके अन्तर्गत हर नागरिक अपनी सहज गरिमा, सहज आत्मसम्मान और सहज स्वतंत्रता बोध के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज करा सके और किसी मुद्दे पर निर्भय होकर सहमति–असहमति व्यक्त कर सके।'' समाज में मानवीय एवं सकारात्मक परिस्थितियों की मौजूदगी लोकतांत्रिक संस्कृति की व्यावहारिक परिणति है। दो राय नहीं कि डॉ. पंकज साहा के समीक्षित व्यंग्य–संग्रह की तमाम रचनाओं में व्यंग्य एक सजग विपक्ष की भूमिका निभाते हुए लोकतांत्रिक हस्तक्षेप कर रहा है। यह हस्तक्षेप परिवर्त्तनकामी सरोकारों से लैस है।

अपने समय की विकृतियों और विरोधाभासों के विरुद्ध व्यंग्य का सर्जनात्मक प्रयोग व्यंग्य–प्रक्रिया को मानवीय चिन्ताओं से जोड़ता है, क्योंकि व्यंग्यकार की मूल चिन्ता उन विकृतियों को दूर कर एक स्वस्थ समाज का निर्माण होता है। जाहिर है, इसके लिए समाज–निर्माण की वैज्ञानिक समझ और अपने समाज की वर्तमान संरचना का ज्ञान–दोनों का सम्यक् बोध व्यंग्यकार को होना चाहिए। यही कारण है कि डॉ. पंकज साहा की व्यंग्य–प्रक्रिया में करुणा एवं व्यंग्य अभिन्न अवयव बनकर उभरे हैं। करुणा समाज के पीड़ित लोगों के लिए और व्यंग्य पीड़ादायी परिस्थितियों को जन्म देनेवाली शक्तियों व संस्थानों के लिए। व्यंग्य की प्रक्रिया किसी भी कोण से समसामयिक जटिलताओं से बचकर परिस्थितियों का सरलीकरण नहीं है, वरन् संवाद–प्रक्रिया का सरलीकरण है। व्यंग्य तभी ऊँचाई पर पहुँचता है, जब उसके मूल में मानवीय संवेदना गहरे स्तर पर मौजूद होती है और ऐसा करते समय व्यंग्यकार को अपने गन्तव्य का अहसास पूरी तरह होना चाहिए। यकीनन डॉ. पंकज साहा के व्यंग्यकार को अपने गन्तव्य का पूरा–पूरा अहसास है, इसीलिए व्यंग्यपरक रचनाएँ हमें झकझोरती हैं, हमारी संवेदना को जगाती हैं।

समीक्षित व्यंग्य–संग्रह की रचनाएँ अपने आकार में भले ही छोटी हैं, पर व्यंग्य–प्रक्रिया का वैचारिक आयतन बहुत ही फैला हुआ है। व्यंग्य–रचनाएँ भी अध्ययन की अनेकतटीयता, बौद्धिक ऊँचाई और भाषिक प्रांजलता व लाक्षणिकता का विस्फोट कर सकती हैं– इसकी अद्‌भुत मिसाल है डॉ. पंकज साहा की व्यंग्य–प्रक्रिया। समय, समाज,संवेदना, शिक्षा, कला, विज्ञान, साहित्य, संस्कृति, धर्म, राजनीति, विकास मॉडल और व्यंग्य की सर्जनात्मक स्थितियाँ–ये तमाम पहलू डॉ. पंकज साहा के व्यंग्यकर्म में अलग–अलग चीजें नहीं हैं, वरन् सभी रासायनिक घोल की तरह उनके व्यंग्यकर्म में एक साथ उपस्थित हैं। यह समावेशी उपस्थिति उनकी व्यंग्य–रचनाओं में एक बृहत्तर अर्थगत ध्वनि पैदा करती हैं। मसलन, संग्रह की शीर्षक रचना यानी व्यंग्य–संग्रह की पहली रचना 'हा! वसंत' पर एक नजर डालने की जरूरत है–''एक दिन बैठे–बैठे मुझे एक इल्हाम हुआ। वैसे अधिकतर इल्हाम बैठे–बैठे ही होता है। भगवान बुद्ध जैसे देवपुरुषों को बैठे–बैठे ही इल्हाम हुआ था। यह भी सच है कि इल्हाम किसी भी अवस्था में, कहीं भी, किसी को भी हो सकता है। आर्किमिडिज को तो जल में बैठे–बैठे हुआ था। जाड़े में मेरी बालकनी में धूप का एक घंटे का स्टॉपेज होता है। अब की ठिठुराती ठण्ड में बालकनी की धूप में बैठे–बैठे अचानक मुझे यह इल्हाम हुआ कि ऋतुराज वसंत आजकल हिन्दी–साहित्य की दुनिया में ईद के चाँद हो गये हैं। एक समय था जब हिन्दी–साहित्य में वसंत 'वनन में, बागन में, कूलन में, कछारन में' अर्थात् सर्वत्र नृत्य किया करता था। धीरे–धीरे वसंत ने संत की मुद्रा धारण कर ली।''

''मुझे यह भी इल्हाम हुआ कि वसंत युग–सापेक्ष होता है। सुप्रसिद्ध कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपने एक गीत में पूछा था 'वीरों का कैसा हो वसंत?'। फाँसी पर चढ़नेवाले आजादी के मतवाले वीरों ने 'मेरा रंग दे वसंती चोला' कहकर अपनी भावना व्यक्त कर दी थी। परन्तु आजादी के बाद के वीरों ने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की इस उक्ति को आप्त वचन मानकर वसंत को अपने अनुरूप अंगीकार कर लिया कि 'वसंत आता नहीं, ले आया जाता है। जो चाहे, जब चाहे ले आ सकता है।''– 'हा! वसंत'

वसंत को कितने संदर्भों में और कितने कोणों से देखा जा सकता है–इसकी एक झलक बतौर बानगी ऊपर अंकित दोनों 'पाराग्राफ' में देख सकते हैं। वसंत एक मौसम है (ऋतुराज) तो वसंत कविता का प्रतिपाद्य भी (बागन में, कूलन में, कछारन में), वसंत संघर्ष का एक रूप है (वीरों का कैसा हो वसंत) तो वसंत शहादत का रंग भी (मेरा रंग दे वसंती चोला), वसंत अनुसंधान है (आर्किमिडिज की खोज) तो वसंत बेहतर भविष्य की परिकल्पना भी (वसंत आता नहीं, ले आया जाता है)। इसी व्यंग्य–रचना में डॉ. साहा आगे लिखते हैं–

''यह बताने की जरूरत है कि आजादी के बाद के 'भारत के वीरों ने' आजादी के वसंत को गाँव जाने से रोक दिया... आजाद भारत के वीरों, जिनमें नेता, व्यापारी, दलाल, अधिकारी आदि शामिल हैं, ने वसंत की जो नयी परंपरा शुरू की है, उसका सुरूर सर्वत्र व्याप्त हो गया है और अब तो न्यायपालिका एवं सेना का गुरूर भी उसके सुरूर के प्रभाव में चूर हो रहा है।''

महज चन्द पंक्तियों में स्वातंत्रयोत्तर भारत के

सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक सच की एक मुकम्मल तसवीर पेश कर दी गयी है और यह पेशी हुई है वसंत के माध्यम से। यह दस्तावेजी सच है कि आजादी के बाद छद्म चरित्रवाले देश के कर्णधारों ने घोषणा की कि भारत एक कृषि–प्रधान देश है, पर नीतियाँ बनी हैं उद्योग–प्रधान। परिणामतः गाँव की कृषि–केन्द्रित अर्थव्यवस्था धराशायी हुई है, सारा विकास नगरों–महानगरों में केन्द्रित हुआ है और ग्रामीण भारत में पतझड़ का भयावह अँधेरा पसरता गया है। देश के शासकवर्ग ने जिस विकास मॉडल को अपनाया, उसके तहत शहर को शहर से जोड़ने का कार्यक्रम प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में शामिल रहा, लेकिन गाँवों को शहरों से जोड़ने का कार्यक्रम शासकवर्ग के एजेण्डे में कभी नहीं रहा। एक लोकतांत्रिक व्यवस्था की बुनियादी शर्त्त है–शासन, शक्ति और सुविधाओं का विकेन्द्रीयकरण, पर व्यवहार में हुआ है ठीक इसका उल्टा यानी विकास की नगरीय केन्द्रीयता। कभी धूमिल ने लिखा था–''बहस शुरू करो/और शहर को अपनी ओर झुका लो।'' यहाँ शहर को अपनी ओर झुकाने का निहितार्थ है अर्थनीति यानी विकास मॉडल को नगरोन्मुखी बनाने की जगह ग्रामोन्मुखी बनाना। यकीनन धूमिल की यही चिन्ता अपनी व्यंग्यात्मक भंगिमा में डॉ. पंकज साहा के यहाँ भी दिखायी देती है। लेखक ने स्वतंत्र भारत के वीरों की मंडली में नेता, व्यापारी, दलाल, अधिकारी आदि के शामिल होने का उल्लेख कर प्रकारान्तर से बोहरा कमिटी की उस रिपोर्ट का समर्थन किया है जिसमें कहा गया है कि देश का मौजूदा विकास मॉडल माफिया राजनीति, भ्रष्ट नौकरशाह और दलाल पूँजीपतिवर्ग के त्रिकोणीय संबंधों से संचालित है। इस त्रिकोणीय संबंधों के समीकरण ने लोकतंत्र के सारे स्तंभों यानी विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका तीनों को गहरे रूप में प्रभावित किया है। लिहाजा भारत का लोकतंत्र ही खतरों से घिरा दिखायी दे रहा है और जब जनतंत्र बचेगा, तभी देश की आम जनता बच पायेगी। डॉ. पंकज साहा की व्यंग्य–प्रक्रिया की विलक्षणता यह है कि वे कठोर प्रश्नों को (सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विद्रूपताएँ) कोमल प्रतीकों (वसंत) के जरिए उठाते हैं– निश्चित रूप से ऐसे ही प्रयोग को आचार्य शुक्ल ने 'विरुद्धों का सामंजस्य' कहा है।

जीने के उपभोक्तावादी ढाँचा ने आदमी के चारित्रिक गठन, जीवन–दृष्टि और समाज की संरचना को प्रभावित किया है और यही उपभोक्तावादी ढाँचा व्यक्ति–जीवन की अन्तर्वस्तु का निर्धारक तत्त्व बना है। लोप होते सामाजिक सरोकार और मनुष्योचित संबंध, घिनौनी सौदेबाजियाँ, संवेदनों की मुक्केबाजी और मतलबपरस्ती के जटिल रूप दैनिक जीवन प्रवेश करते गये है। तमाम चीजें मौद्रिक आधार पर तय होने लगी हैं। 'मित्रता' शीर्षक व्यग्य–रचना में मित्रंता के बदलते रूप और रंग की ओर संकेत है–''एक पुस्तक–विक्रेता मेरा मित्र है। साल–दो साल में उनके मित्रों के चेहरे बदल जाते हैं। एक प्रसिद्ध अंग्रेजी स्कूल के प्रिंसिपल शर्मा जी से उसकी अत्यंत घनिष्ठता थी। शर्मा जी कभी उनकी दुकान में आ जाते तो उनको बैठाने के लिए वह अपनी कुर्सी तक छोड़ देता। दरअसल शर्मा जी अपने स्कूल के लिए सालाना दस–बारह लाख रुपये की किताब–कॉपी, पेंसिल, रबड़ आदि उसी की दुकान से खरीदते थे। शर्मा जी रिटायर हो गये। उनके स्थान पर सिन्हाजी स्कूल के प्रिंसिपल बनकर आये। अब मेरा मित्र शर्माजी का हाल–चाल भी जानने नहीं जाता।'' लेखक ने आर्थिक आधार पर बनते सरोकारों और बनते संबंधों की झलक देकर मित्रता के बदलते चेहरे को सामने लाने का प्रयास किया है। इस व्यंग्य–रचना में लेखक की यह टिप्पणी हमारे भीतर के मनुष्य के सामने सवाल खड़ा करती है।–''पहले मित्रता हो जाती थी। अब मित्रता की जाती है। यह चीनी सामान की तरह चमकदार तो होती है, पर टिकाऊ नहीं होती। इस मित्रता में गणितीय फैक्टर बहुत बड़ी भूमिका निभाता है।'' स्पष्ट है कि मित्रता अब भावधर्मी नहीं रह गयी है, वरन् मुद्राधर्मी हो गयी है।

पूँजीवाद का बाई–प्रोडक्ट है उपभोक्तावादी जीवन– दृष्टि। इस उपभोक्तावादी जीवन–संस्कृति के प्रभाव में समाज तेजी से आता गया है, जिससे संकट गहरा हुआ है। मनुष्य का मानवीय संस्कृति से ज्यादा उपभोक्तावादी संस्कृति पर भरोसा बढ़ता गया है। लिहाजा स्थिति क्रमशः इतनी भयावह होती गयी है कि उपभोक्तावादी जाल में फँसा आदमी केवल न घरों में विस्थापन की पीड़ा भोगने के लिए अभिशप्त होता गया है, बल्कि वह मनुष्यता, सामाजिकता और मूल्यगत सौंदर्य–बोध की श्रेष्ठता से भी विस्थापित होता गया है। उपभोक्तावादी जीवन–दृष्टि ने समाज, संस्कृति, सरोकार, प्रेम, प्रतिबद्धता, शृंगार, सहवास, सौंदर्य–इस तमाम शब्दों के अर्थ बदल दिये हैं। इस अर्थान्तरण ने एक सहज और संवेदनशील मनुष्य के भीतर गहरे तनाव को जन्म दिया है। यह तनाव वस्तुओं और व्यक्तियों के प्रत्यक्ष व परोक्ष चेहरे की भिन्नता के कारण पैदा हुआ है। आदमी के दोहरेपन यानी बाहरी और भीतरी भिन्नता ने जीवन और समाज में पाखण्ड को फैलाव दिया है और इस फैलाव ने निर्मल–निश्छल व आत्मिक सौंदर्य बोध को नष्ट कर उसकी जगह एक नये किस्म के भौतिक सौंदर्य बोध को जन्म दिया है जिसकी ओर संकेत करते हुए लेखक लिखता है–''किसी जमाने में सौंदर्य का दिलवाला पक्ष अत्यंत मजबूत था। दुनिया की सारी अमर प्रेम कहानियाँ प्रमाण हैं। कहते हैं कि लैला खूबसूरत नहीं थी, पर कैश उसके प्यार में मँजनू (पागल) बन गया था। सौंदर्य का यह पक्ष आजकल दूज का चाँद हो गया है। सौंदर्य का उपयोगितावाला पक्ष ही आज ज्यादा चलन में है। अधिकांश सुंदर लड़कियाँ अपना पति चुनते समय लड़के की सुंदरता को नहीं, उसकी अच्छी सैलरीवाली नौकरी में सौंदर्य देखती है। एक सुंदर लड़की ने एक कुरूप लड़के को देख शादी के लिए हाँ कर दी। शादी के बाद एक दिन मौका देखकर लड़के ने पत्नी से पूछा–'तुमने मुझमें कौन–सी सुंदरता देखी, जो शादी के लिए तुरंत राजी हो गयीं?' पत्नी बोली– 'पिछले साल मैं अपने मामा के घर गयी थीं। उनकी छत से मैंने आपको अपने घर का बर्तन माँजते देख लिया था।''– सौंदर्य

भाषा की सत्ता हमेशा सामाजिक संदर्भों से अनुशासित और विश्लेषित होती है और जब समाज का स्वरूप बदल रहा हो, समाज के सरोकार बदल रहे हों तो भाषा के रूप–रंग में बदलाव होना स्वाभाविक है। हिन्दी के अनेक ऐसे शब्द हैं, जो अपने परम्परागत अर्थ की धुरी छोड़ नये अर्थ ग्रहण कर रहे हैं। भाषा की भी अपनी एक संस्कृति होती है यानी भाषा का संबंध संस्कारों से होता है। दो राय नहीं कि भाषा के बने–बनाये रूपों को तोड़ना एक स्तर पर अपने संस्कारों को तोड़ने का साहसिक कदम भी होता है। जब समाज का उपभोक्तावादी कायान्तरण हो रहा है, तो शब्दों का उपभोक्तावादी काया ग्रहण करना स्वाभाविक है–''दुनिया आज तेजी से बदल रही है। भाषा भी बदल रही है। शब्दों का रिश्ता कभी आत्मिक जगत् से था, आज भौतिक जगत् से है। जब भौतिक जगत् में परिवर्तन होता है, तो शब्दों की दुनिया में भी परिवर्तन लाजिमी है। परंतु भाषा–संस्कार एवं भाषा विकास के नाम पर मानो आज शब्दों का मैच खेला जा रहा है।... सरकारी एवं वैयक्तिक स्तर पर भी भाषा–सुधार का कार्य होने लगा है। पहले शारीरिक रूप से अक्षम व्यक्ति के लिए अपंग के बदले 'विकलांग' शब्द सरकार द्वारा निश्चित किया गया, फिर इसे बदलकर 'दिव्यांग' कर दिया गया। निश्चित

रूप से 'विकलांग' की तुलना में 'दिव्यांग' में अधिक दिव्यता है। इसी प्रकार शिक्षण–संस्थानों के शिक्षकेतर कर्मचारियों के लिए 'शिक्षाकर्मी', किसी भी सरकारी संस्थानों में झाड़ू लगानेवालों के लिए 'सफाईकर्मी' तथा वेश्याओं के लिए 'यौनकर्मी' जैसे पद सामाजिक सोच के उन्नयन के परिणाम हैं।''– 'शब्द–लीला'

'हिन्दी की विचित्रता' शीर्षक व्यंग्य–रचना में भी शब्दों की प्रयोगगत अनर्गलता पर मारक टिप्पणी है। त्रासदी यह है कि शब्दों के संदर्भगत प्रयोग और अर्थगत प्रयोग भी गलत हो रहे हैं, पर ऐसे गलत प्रयोगों के परिष्कार की जगह गलत प्रयोगों की आवृत्ति हर स्तर पर हो रही है–सरकारी और गैर–सरकारी दोनों स्तरों पर–''आजकल 'वृक्ष लगाओ, वृक्ष बचाओ' का नारा सर्वत्र गूँजायमान है। 'वृक्ष बचाओ' वाली बात समझ में आती है, पर वृक्ष लगाया कैसे जाता है, यह मेरी समझ से बाहर है।... साधारणत: वृक्ष वैसे पौधे को कहते हैं, जो वयस्क हो गया हो और फल भी देने लगा हो।... यही विसंगति 'धान रोपनी' पद में भी है, क्योंकि रोपा तो जाता है धान का पौधा। इसी तरह पीसा तो जाता है गेहूँ और कहते हैं आटा पीसना'' इसी रचना में लेखक ने एक दोहानुमा मुहावरे का प्रयोग कर शब्दों की प्रयोगगत विसंगति को उभारा है–''पीकदानी में पीक है/पानदानी में पान/मच्छरदानी क्यों कहें/उसमें है इन्सान।'' यह प्रयोग शब्द–आविष्कार की चुनौती हमारे समझ पैदा करता है।

नॉवेल सम्मान से सम्मानित और 21 वीं सदी के अंग्रेजी के बड़े नाटककार हेराल्ड पिंटर ने लिखा है कि हमारे समय का सबसे बड़ा सच यह है कि तमाम चीजें राजनीतिक व्यवस्था के द्वारा तय हो रही हैं। ऐसे में आज की राजनीतिक व्यवस्था के चरित्र को समझे बगैर आज के समय और समाज के चरित्र को नहीं समझा जा सकता। डॉ. पंकज साहा की सोच भी कुछ ऐसी ही लगती है, इसीलिए उनकी पैनी नजर राजनीतिक परिदृश्य के विरोधाभासों और राजनेताओं के छद्मवेशी चरित्र को तीखे व्यंग्य के साथ उजागर करती है। भारत में राजनीति करनेवालों ने इस तथ्य को गहराई से समझ लिया है कि गाँधीवाद भारतीय राजनीति का पासपोर्ट है, जिसको दिखाये बगैर या जिसका नामजप किये बिना सत्ता तक नहीं पहुँचा जा सकता है। यही कारण है कि सत्ता–आकांक्षी नेताओं ने या दलों ने गाँधी के राजनीतिक प्रयोगों को, उनके भजन को उनके आंदोलनात्मक औजारों को अपने आचरण से नहीं जोड़ा है, वरन् सत्ता के करीब पहुँचने के 'टूल्स' के रूप में इस्तेमाल किया है। भारत की संसदीय राजनीति में सत्ता पक्ष और प्रतिपक्ष के बीच 'दोस्ताना विरोध' (फ्रेन्डली फाइट) की एक नयी राजनीतिक शैली का विकास हुआ है। दरअसल पूँजीवादी राजनीति में कौन जाने, आज जो विरोध में है, कल समर्थन में आ जाये। इसीलिए विरोध–प्रदर्शन में विपक्ष एक सीमा से अधिक आक्रामकता का परिचय नहीं देता और सत्तारूढ़ दल राजनीतिक संभावनाओं के मद्देनजर कोमल भाव से पेश आता है। इस तरह सत्ता के राजनीतिक समीकरण तो बदलते रहते हैं, पर जनता के जीवन में यथास्थिति बनी रहती है। इस जमीनी यथार्थ को समझने के कारण ही डॉ. पंकज साहा को धरना, प्रदर्शन, अनशन, आंदोलन आदि से जुड़ी तमाम गतिविधियाँ विदुषकीय और नाटकीय लगती है–''हमारे देश में धरना, अनशन, आंदोलन गांधी जी की देन है। राजनीति के आकाश में छा जाने के लिए ये आजमाये हुए नुस्खे हैं। हमारे देश के कई नेता तो केवल धरने के बल पर फर्श से अर्श पर चले गये। धरने देकर मुख्यमंत्री बनने एवं मुख्यमंत्री बनकर धरने पर बैठने की घटनाएँ सिर्फ अपने देश में घटी हैं। धरने में एक सुविधा यह है कि इसमें मरने का डर नहीं रहता। दूसरी सुविधा यह है कि बिरयानी खाकर, कोल्ड ड्रिंक्स/हॉट ड्रिंक्स पीकर भी धरने पर बैठा जा सकता है और प्रशासनिक, पारिस्थितिक या ईश्वरीय कोप के मद्देनजर धरने का स्थान बदला जा सकता है और जब चाहे धरने को खत्म किया जा सकता है। परंतु अनशन में ऐसी सुविधाएँ नहीं रहती। अनशन करनेवाला व्यक्ति हर आहट पर कान लगाये रहता है कि शीघ्र उसकी माँग मान ली जाय या कम–से–कम सांत्वना मिल जाय और कोई राष्ट्रीय स्तर का नेता अपने कर–कमलों से जूस पिलाकर उसका अनशन तुड़वा दे।''

'सुरक्षित मार्ग' व्यंग्य–रचना में ही डॉ. पंकज साहा मार्क्सवादियों की भी गहरी पड़ताल करते दिखायी देते हैं क्योंकि 1990 के दशक में एकध्रुवीय विश्व बन जाने के बाद तथा नयी आर्थिक नीति लागू होने के बाद, पक्ष–विपक्ष की विभाजन–रेखा मिट–सी गयी है और भ्रष्ट्राचार से लेकर अत्याचार तक मामले में सबके चेहरे एक समान दिखायी पड़ने लगे हैं। एक अर्थ में देखा जाए तो गाँधीवाद के आधार का विस्तार हुआ है, क्योंकि संघ–परिवार से लेकर सरकारी कम्युनिस्ट तक नयी आर्थिक नीति को साष्टांग दण्डवत् करते नजर आ रहे है। झण्डे अलग–अलग हैं, पर डण्डा एक ही है।

उपभोक्तावाद ने हमारी मानसिकता और सामाजिकता के भीतर इस कदर उथल–पुथल किया है कि युवा कवि कुमार अम्बुज से शब्द उधार लेकर कहें तो–''जहाँ दो जन इकट्ठे हुए/वहीं हो जाता बाजार।'' पूँजीवादी बाजारतंत्र और अर्थतंत्र ने जीवन और समाज के सभी पक्षों को प्रभावित किया है। उपभोक्तावाद और बाजारतंत्र की युगलबंदी ने हमारी संवेदना को इतना अपाहिज बनाया है कि ऐसा लगता है कि मानो सभी बाजार में खड़े हैं जहाँ हर आदमी दूसरे आदमी के साथ क्रय–विक्रय का मोल–जोल कर रहा है। मौजूदा बाजारवादी परिदृश्य एक मायावी परिदृश्य है, जिसमें हर चीज अपनी वास्तविकता को छिपाकर नकली चेहरे के साथ प्रकट हो रही है–''पृथ्वी पर ऐसे अनेक लोग हैं, जो सर्वगुणसंपन्न तो नहीं, पर बहुगुणसंपन्न अवश्य है। मि. वर्मा ऐसे ही एक व्यक्ति थे।... बहुत उम्र तक उन्होंने विवाह नहीं किया था। पूछने पर वे बड़े बेबाकी से कहते 'यार, जब बाहर शुद्ध दूध मिल जाता है, तो घर में गाय पालने की क्या जरूरत हैं?' पर उनका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि कोई उन पर उँगली उठाने का साहस नहीं करता। दबी–दबी चर्चाएँ जरूर चलती।... एक बार पहाड़ से ग्रीष्मावकाश बिताकर जब वे लौटे, तो उनके साथ एक सुन्दर गाय थी। नई घटना यह हुई कि वह गाय उनके साथ स्थायी रूप से रहने लगी। खुसुर–फुसुर जब चर्चाओं में परिवर्तित होने लगी, तो उन्होंने एक शाम अपने कुछ मित्रों को टी–पार्टी में बुलाया। पार्टी में उन्होंने अपनी नई गाय का परिचय कराया 'इनसे मिलिए, ये मेरी धर्मपत्नी शीला है।... शीघ्र ही लोगों को ज्ञात होने लगा कि मिसेज शीला एक दुधारू गाय हैं, जिसके दूध की कुछ धारें सत्ता के गलियारे तक पहुँचती है। मि. वर्मा को राजधानी में एक ऊँची कुर्सी मिल गयी है। आजकल वे कमजोरों पर भौंकते हैं, बलवानों से दबते हैं, मित्रों से ही–ही कर हाथ मिलाते हैं और अपने आकाओं के सामने दुम हिलाते हैं।''– 'जैसी बहे बयार'

समकालीन परिदृष्य के अनेक सवाल, संदर्भ और स्थितियाँ व्यंग्य–संग्रह की रचनाओं में गुलेलधर्मी तेवर के साथ मौजूद हैं, जो समय और समाज से जुड़ी हलचलों, बदलावों और ठहरावों के प्रति लेखक की गहरी संलग्नता एवं सजगता का परिचय देते हैं –''सरकार को यह भी चाहिए कि घोटाला करके या बैंकों का कर्ज लेकर जो विदेश भाग गये हैं, उन्हें कभी देश में लाने का प्रयत्न न करें, क्योंकि जितना प्रयत्न, उतना खर्च। फिर वे देश में आकर कर्ज की रकम या घोटाले का पैसा तो लौटायेंगे नहीं, हाँ नये

घोटाले के लिए कोई सुरक्षित आश्रय अवश्य खोज लेंगे।''–'किट्टी'

''जैसे आज पैसों का अवमूल्यन हो गया है, वैसे ही अंकों का भी अवमूल्यन हो गया है। इसीलिए 'एटी प्लस' लानेवाले बच्चों को अब परिवार एवं समाज में दया का पात्र माना जाता है।''–'एटी प्लस'

''दुनिया बदल रही है। हमारी अनिवार्य आवश्यकताएँ भी बदल रही हैं। पहले रोटी, कपड़ा और मकान अनिवार्य आवश्यकताएँ हुआ करती थीं। अब तो मोबाईल भी शामिल हो गया है। आधुनिक युवकों के लिए बाईक चलाना और युवतियों के लिए ब्यूटी पार्लर जाना अनिवार्य आवश्यकता है।

नेताओं के लिए सत्ता पाना, सत्ता बचाना अनिवार्य आवश्यकता है। इसके लिए सांसदों, विधायकों की खरीद–फरोख्त जिसे राजनीतिक भाषा में हॉर्स ट्रेडिंग कहा जाता है, आज अनिवार्य आवश्यकता है।'' 'चोर अंकल'

''हमारी नौकरशाही व्यवस्था में झूठ का सिक्का आपसी विश्वास के चक्के पर चलता है। नेता बाबू, थाना बाबू और पत्रकार बाबुओं का साथ मिलता रहें, तो विश्वास रखिए, सबका विकास होगा। ''–'सबका साथ, सबका विकास और सबका विश्वास'

ऊपर अंकित उद्धरण महज शब्दों की, वाक्यों की, टिप्पणियों की प्रस्तुतियाँ नहीं हैं, वरन् ये मौजूदा देशकाल को पूरी नग्नता में उभारती हैं। कबीर ने जब उलटबासियाँ लिखी थीं तो केवल काव्य–चमत्कार के लिए नहीं, वरन् उनका सार्थक और जनपक्षीय प्रयोजन था। डॉ. पंकज साहा की व्यंग्य–रचनाओं का मूल सर्जनात्मक प्रयोजन है–सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक परिष्कार और मानवीय संस्कार का संचार करना।

डॉ0 पंकज साहा की व्यंग्य–रचनाएँ थोड़ी भिन्न दिखती हैं। आलोचना की शब्दावली में कहें तो उनकी व्यंग्य–रचनाएँ 'देरिदा' के विखण्डनवाद के नजदीक खड़ी दिखायी देती है। विखण्डनात्मकता, व्यंग्यात्मकता से भिन्न है। व्यंग्य में विद्रूप या विरूपण भी होता है, लेकिन वह धीरे–धीरे एक मजा लेने की चीज बनता चला जाता है। व्यंग्य कई बार दिशाहीनता की भी प्रतिध्वनि देने लगता है। व्यवस्था में विकल्प की तलाश करना और व्यवस्था के विकल्प की तलाश करना–दोनों अलग–अलग वैचारिक प्रक्रियाएँ हैं। यहीं व्यंग्य की रचनात्मक सीमा दिखायी देने लगती है। विखण्डनवाद में व्यंग्य भी होता है, खण्डन भी होता है, नकार भी होता है, लेकिन उसमें विनोद या मसखरापन नहीं होता। हास्य पैदा करने का अर्थ हास्यास्पद हो जाना नहीं होता। विखण्डनवाद में मूल्यहीनता, बेहयाई, बेईमानी, बैमुरौव्वती आदि के प्रति लेखक का न केवल क्षोभ, बल्कि बेइन्तहा घृणा और वितृष्णा होती है। वह वीभत्सता, विसंगति या गन्दगी का वर्णन मजा लेने के लिए नहीं करता, बल्कि उसके प्रति एक गहरी हिकारत और हेयता वहाँ होती है। इसीलिए व्यंग्य में जो पीड़ा बोध या विडम्बनात्मकता पायी जाती है, उसकी जगह विखण्डनवादी अभिव्यक्ति–शिल्प में एक धिक्कारबोध और स्थितियों में बदलाव देखने की तीव्र बेचैनी का भाव अन्तर्निहित होता है। इसलिए विखण्डनात्मक शिल्प–प्रविधि की अंतिम परिणति न तो केवल खण्डनात्मक होती है और न केवल नकारात्मक, बल्कि इसमें एक प्रकार की प्रबोधात्मकता पायी जाती है। इसी अर्थ में विखण्डनवाद, मार्क्सवाद का एक अग्रगामी विकास है, उसका एक नया परिप्रेक्ष्य है। हालाँकि देरिदा उत्तरआधुनिक विचारक हैं और मार्क्सवादी भी नहीं हैं। लेकिन यह भी ऐतिहासिक सच है कि 20वीं सदी के अंतिम दशक में सोवियत संघ के पतन के बाद जब मार्क्सवाद की प्रासंगिकता पर सवाल उठाये जाने लगे तो मार्क्सवाद के पक्ष में सर्वाधिक सशक्त स्वर बनकर उभरे जॉक देरिदा। देरिदा मार्क्स और मार्क्सवाद की हिमायत में सामने आये और इसी क्रम में उनकी पुस्तक (सोवियत संघ के विघटन के महज दो–तीन वर्ष के बाद ही) 'स्पेक्टर्स ऑफ मार्क्स (1993) प्रकाशित हुई, जिसमें देरिदा मार्क्सवाद को केवल राजनीति का दर्शन नहीं मानते, वरन् मार्क्सवाद को जिन्दगी की बुनावट से एक अविभाज्य रूप से गूँथा हुआ सूत्र मानते हैं। देरिदा अपनी इस पुस्तक में फुकोयामा के 'विचारों का अंत', 'इतिहास का अंत' जैसे फलसफे को खारिज करते हुए घोषणा करते हैं कि मार्क्स इतिहास के अंत का प्रतीक नहीं हैं, बल्कि वे ऐसी बहस–ऐसे विमर्श की दीर्घाओं के द्वार खोलते हैं जो हमें भविष्य की दिशाओं में ले जाता है। इसीलिए मैं देरिदा के विखण्डनवाद को मार्क्सवाद का विस्तार मानता हूँ। लेकिन विखण्डनवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद का पयार्य नहीं है, क्योंकि आलोचनात्मक यथार्थवाद में लेखक के कुछ पूर्वग्रह होते हैं। विखण्डनवाद के मूल में पहले से तय कुछ नहीं होता, सिवाय इसके कि लेखक यथार्थ के नये रूप–रंग से बेतरह क्षुब्ध होता है। उसकी यह घृणा समय के चरित्र को नकारने में नहीं, वरन् उसे पूरा 'स्पेश' देते हुए उसके बदले हुए रूप को उजागर करने में व्यक्त होती है। उजागर करने की इस प्रक्रिया में समय और समाज का चरित्र जो कभी नायक की तरह लगता था, अब प्रतिनायक–सा बनकर सामने आता दिखायी देता है। डॉ. पंकज साहा की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति भंगिमा कुछ इसी प्रकार की है–''प्रजातंत्र निश्चित रूप से अच्छा तंत्र है। पर राजतंत्र की भी कुछ बातें बहुत अच्छी थीं। पहली बात यह कि राजा अपने मन से योग्य व्यक्ति को पुरस्कार देते थे, किसी की सिफारिश पर नहीं, अतः पक्षपात एवं भ्रष्टाचार की गुंजाइश नहीं थी। दूसरी बात थी तुरन्त न्याय। राजा अपराधियों, दोषियों को सरेआम पिटवाते थे, फाँसी दे देते थे, गला तक उतरवा देते थे। आज की तरह जाँच एजेंसियों द्वारा जाँच करवाकर, आयोग बिठाकर, वर्षों मुकदमा चलाकर देश के धन और जन के मन के साथ खिलवाड़ तो नहीं करते थे।''

–'तब और अब'

उपभोक्तावादी संस्कृति मनुष्य के चरित्र और उसकी मानवीय चेतना को एक खास साँचे में ढालने का षडयंत्र रच रही है। इसी षडयंत्र का परिणाम है कि अपने चतुर्दिक हो रही घटनाओं, दुर्घटनाओं व परिघटनाओं को देखकर आहत होने, हतप्रभ होने, उबल पड़ने या सँभलने का हमारा संवेदनात्मक 'स्पेश' लगातार सिमटता जा रहा है। संवेदनहीनता, पैसिविटी और विस्मृति की भयावह स्थिति पैदा हो रही है। संग्रह की तमाम रचनाएँ अपने समय के विविध परिदृश्यों के प्रामाणिक और गहरे पाठ से आकार व धार हासिल की है। इसलिए डॉ. पंकज साहा की व्यंग्य–रचनाएँ अपनी समग्रता में 'डिस्टोपिक' समय की पुनर्रचना लगती हैं। चाहे समय के पैमाने पर व्यंग्य–रचनाओं को नापें अथवा व्यंग्य–रचनाओं के दर्पण में समय और समाज को देखने का प्रयास करें, तो समय और व्यंग्य की सृजन–प्रक्रिया के बीच मानवीय संवेदनों की मुक्केबाजी लगातार दिखायी देती है। संवेदनों की यह मुक्केबाजी ही व्यंग्य–रचनाओं को व्यंजनाश्रित अर्थवत्ता प्रदान करती है और यही व्यंजनात्मकता हमें संवेदित भी करती हैं और आंदोलित भी।

समीक्षा

अंजुरी भर रोशनी

दयानन्द जायसवाल
संपादक

'अंजुरी भर रोशनी' निबंध संग्रह में वीणा सिंह ने मानवीय सरोकारों को, उनकी प्रासंगिकता के अनुरूप पूरे कर्मठता ओर उत्साह से उठाया है। बहुत–सी ऐसी बातें जो समाज को बराबरी के स्तर पर लाने के लिए आवश्यक थीं, उनमें कहीं न कहीं गड़बड़ी रही हैं। ऐसे में इनका लेखन, इनकी प्रखर प्रतिभा, विस्तृत जीवनानुभव, व्यापक अध्ययन और गंभीर चिंतन, साधना एवं संवेदना की दृष्टि से विशिष्ट मर्मस्पर्शी और सामाजिक सरोकारों से जुड़ा यथार्थवादी परंपरा को विकसित किया है। निरंतर बदलते सामाजिक संबंधों और समीकरणों का साक्षात्कार कराती हुई ऊपर से नीचे तक विकृत होती जा रही व्यवस्था को सामने लाकर भारतीय समाज में व्याप्त विकृतियों का उद्घाटन करती हैं।

हिन्दी में निबंध का जन्म और विकास साहित्य के आधुनिक काल–भारतेन्दु युग की देन है। हिन्दी निबंध का द्वितीय उत्थान 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' तथा 'सरस्वती' के प्रकाशन से शुरू होता है। द्वितीय उत्थान काल को द्विवेदी युग के नाम से जाना जाता है। हिन्दी निबंध साहित्य का तृतीय उत्थान बीसवीं सदी के तृतीय दशक से होता है। इस समय तक हिन्दी गद्य की भाषा सुव्यवस्थित एवं परिमार्जित हो चुकी थी, रही–सही कसर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के आविर्भाव ने पूरी कर दी। निबंध को यहाँ गद्य की कसौटी पर कहा गया है। यह तार्किक विधा हृदय और बुद्धि दोनों के संयुक्त संस्पर्श से विकसित होती है। इस संग्रह में लेखिका वीना सिंह ने निबंध की वैचारिक गहराई और कल्पना को ऊँचाई के साथ अध्ययन, अनुभव और प्रतिभा के बल अपनी अभिव्यक्ति को जीवंतता प्रदान की हैं।

'अंजुरी भर रोशनी' इस निबंध संग्रह को लेखिका वीना सिंह की संवेदनशील दृष्टि और सहज प्रवाही शैली ने सुरुचिपूर्ण एवं पठनीय बना दिया है। इसमें पचास ऐसे आलेख हैं, जिसमें समस्याओं से घिरा समाज, सहनशीलता और अत्याचार, परित्यक्त महिलाएँ और सामाजिक वर्जनाएँ, नशाखोरी का दंश झेलती महिलाएँ, कब सुधेरगा स्त्रियों का जीवन, असमानता की दीवार, जीवन असुरक्षा के घेरे में, दहेज एक विषवेल आदि आलेखों के द्वारा समाज की विसंगतियों तथा कुरीतियों को बदलने का प्रयत्न करती हैं तथा उनके अंधकारभरे जीवन में प्रकाश की लौ दिखाने के लिए अपनी अभिव्यक्ति को रूपायित की हैं। इन आलेखों में वर्तमान समाज की देहरी पर मानवीय रिश्ते खारिज हुए मिल रहे हैं, लोगों के मध्य पारस्परिक विश्वास में कमी आई है, स्वार्थ कहीं दुम हिला रहा है तो कहीं किसी की गर्दन दबा रहा है। कोई दायित्व से भाग रहा है, तो कोई अपना दोष किसी के माथे मढ़ रहा है। चारों तरफ धन–लोलुपता दिखाई पड़ रही है, किसी को किसी की चिंता नहीं, अपितु हर आदमी अपने जुगाड़ में लगा हुआ है। धोखा और फरेब अट्टहास लगा रहे हैं। इस नष्ट–भ्रष्ट समाज की नब्ज वीना जी टटोल रही हैं। अन्वेषी लेखिका इस सामाजिक सच्चाइयों को निरूपित करने में सफल हुई हैं तथा इसे पाठकों से रू–ब–रू कराने अपनी कलम की ताकत से सामाजिक परिवेश का ताना–बाना बुनी हैं। समाज में दीमक लगी मानसिकता को उकेरी हैं कि 'समाज में कुछ ऐसी मान्यता है कि विवाह के बाद लड़की की पूरी जिम्मेदारी पति की ही है और पति छोड़कर चला जाए, ऐसे में बेचारी लड़की क्या करे?महिलाएँ तब भी चुपचाप सहती थी, आज भी सहती हैं। 'परित्यक्त महिलाएँ और सामाजिक वर्जनाएँ' नामक आलेख में कहती है–यह सामाजिक वर्जनाएँ, आहत हुई भावनाएँ, उनके अंदर की पीड़ाएँ देखकर भी समाज चुप्पी साध लेता है। 'नारी और पृथ्वी में समरूपता' नामक आलेख में नारी की शक्ति को भी दर्शाया गया है। कहती हैं–'नारी को अबला कहकर उनकी शक्ति को भले ही झुठला दिया गया हो, परन्तु इस सत्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि संकट एवं चुनौतियों का मुकाबला करने में महिलाएँ अपने शौर्य और पराक्रम में कभी पीछे नहीं रहीं हैं।' अगर इन दोनों कथनों के बीच का अंतर देखें तो लेखिका का कहना है कि स्त्री और पुरुष एक–दूसरे के पूरक हैं, एक दूसरे के बिना अधूरे हैं। अगर एक दूसरे का आपसी तालमेल रहता है तो नारी पृथ्वी की तरह सहनशीलता की प्रतिमूर्ति हो जाती हैं, जीवनदातृ हो जाती हैं। आगे कहती हैं–'यदि नारी और पृथ्वी सुरक्षित है तो मानव जीवन भी सुरक्षित है। यदि इन दोनों के साथ सभ्य व्यवहार न किया गया तो ही मानवता का संपूर्ण विनाश सुनिश्चित है।' लेकिन लेखिका तब मर्माहत होती हैं, जब देखती हैं कि रिश्तों में दिन–प्रतिदिन बिखराव बढ़ता ही रहा है। जबकि इनकी कल्पना समानता की है, एकता की है, सुरक्षित अस्तित्व की है, क्योंकि नारी की जीत पुरुष से लड़ने में नहीं, उसका साथ देने में है। इसी प्रकार नारी को कमजोर माननेवाला पुरुष यह समझे कि उसका पौरुष महिला को अपने पीछे रखने में नहीं, बराबर रखने में है, उसे सम्मान देने में है। नारी को एक संघर्षपूर्ण जीवन देनेवाला समाज यह समझे कि नारी न सिर्फ हमारे परिवार की या समाज की, बल्कि वो सृष्टि की जीवनधारा को जीवित रखनेवाली नींव है।

लेखिका ने जीवन के यथार्थ को करीब से देखा और सिर्फ देखा ही नहीं, उसे परखा, उसकी समीक्षा की और सरल– सहज शब्दों में इन आलेखों के द्वारा लोगों को चेतना का मूलमंत्र दिया। इनके आलेखों में चाहे ''असुरक्षित अस्तित्व'' हो, जिसमें स्त्री मन हमेशा दुविधा, आशंका तथा असुरक्षा से भरा रहता है। 'मानसिक तनाव से गुजरता जीवन' नामक आलेख में सचेत करना चाहती है कि मानसिक तनाव का प्रमुख कारण भावनात्मक विकृतियाँ हैं, जो भावनाओं को दबाने–कुचलने, मसलने से और ज्यादा गंभीर रूप लेती है। इसलिए 'नकारात्मक और सकारत्मक की ओर' आलेख में कहना चाहती हैं–जीवन में सकारात्मक परिवर्तन तभी संभव है, जब हम अपना सही आकलन करेंगे और यह स्वीकार करेंगे कि हमारी असफलताओं के पीछे हमारे व्यक्तित्व में कोई कमी है, जिसके विरुद्ध हमें संघर्ष करना पड़ेगा। इस प्रकार जीवन में प्रेम आवश्यक है, क्योंकि जीवन बहुमूल्य है, इसे हम मुस्कुराहट के साथ जीएँ, तो जिंदगी खुशहाल होगी। इस प्रकार रचनाओं में जीवन मूल्य, सामाजिक सरोकार, मानवीय और भाषायी सद्भाव, शोषण, अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध आवाज दीं तथा नारी जीवन को प्रमुखता से उभारी है। इस संग्रह में समाज का व्यापक व संश्लिष्ट चित्रण हुआ है। इन्होंने आधुनिक परिवेश की कृत्रिमता एवं खोखलेपन को बेनकाब कर उसे यथार्थ दृष्टि प्रदान की हैं। नारी जीवन की विसंगतियों के उद्घाटन के साथ आधुनिक युग संदर्भ में मानवीय मूल्यों की खोज इनकी विशेषता है। जीवन के विविध पक्षों का संस्पर्श कर यथार्थ अभिव्यक्ति देने का आग्रह है और असमानत एवं आधुनिकता के बारीक से बारीक रेशों को परिवर्तित सामाजिक संदर्भों में ही अभिव्यक्त कर इन्होंने समकालीन और सामाजिक दायित्व का निर्वाह करने की सायास कोशिश की हैं।

पुस्तक– अंजुरी भर रोशनी, लेखिका–वीना सिंह, प्रकाश विद्या बूक्स, नई दिल्ली। मूल्य–400 रू.

वार्ता

आलोचना का भविष्य उज्ज्वल है

(साहित्य की यथार्थ स्थिति पर डॉ. जयशंकर शुक्लजी से एक साक्षात्कार)

अनिल कुमार पाण्डेय

वर्तमान समय में साहित्य में यथार्थ की बातें की जा रही हैं। क्या हिन्दी साहित्य में यथार्थ की दृष्टि में पूर्ववर्ती मध्यकाल या आदिकाल का अध्ययन नहीं किया जा सकता?

अनिलजी, आपका यह प्रश्न अपने आपमें एक परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें एक आंदोलन की सूत्रपात को महसूसा जा सकता है। साहित्य को निरूपित करनेवाले सोपानों में प्रमुखतया कथ्य, शिल्प एवं शैली महत्वपूर्ण हैं। आपका प्रश्न कथ्य केन्द्रित है। वास्तव में जब हम कथ्य का शाब्दिक अर्थ देखते हैं तो वह है–यथा अर्थ। जिसका अभिप्राय है, जैसा देखा, जाना, समझा, महसूसा जाय वैसा अर्थ। अब यह निर्धारण साहित्य के कर्ता पर जाकर रुकता है कि वह तथ्यों, सूचनाओं, सारणियों, सत्यों को किस तरह अनुभव करके अपने अनुभूति को कहाँ, कैसे कब निरूपित करता है। उसे अपने निरूपण में अब कथ्य को किसी शिल्प व शैली में बाँधना होता है। हिन्दी साहित्य की प्रमुख विधाएँ, गद्य, पद्य एवं मिश्रित (चम्पू) मानी जा सकती है। अब इन विधाओं के विविध रूपों पर विमर्श करने पर हमारे सामने शैलियों का प्राकट्य होता है। अनिलजी यथार्थ की चर्चा में हम गल्प एवं कल्पना को नजरअंदाज नहीं कर सकते। पूर्ववर्ती मध्यकाल अथवा आदिकाल में लेखन का स्वरूप हमें ध्यान से विवेचित करना होगा। उन काल खंडों में रचनाकार हमेशा की तरह दो प्रकार के रहे हैं, एक राज्याश्रयी रचनाकार तथा दूसरे स्वतंत्र व जनधर्मी साहित्यकार।

अब इन कोटियों में यथार्थ चित्रण की जब हम बातें करते हैं, तो दोनों ही यथार्थ का सटीक चित्रण करते हैं, वह यथार्थ जो उन्होंने अनुभव किया है। राज्याश्रयी रचनाकार जहाँ शासन सत्ता के लिए विरुदावली तैयार करते रहे, वहीं लोक कवि आम जनता के बीच रहकर उसका यथार्थ निरूपित करते रहे। आज के दौर में उस काल का मूल्यांकन करें तो रासो के रचनाकार हों या जयदेव, विहारी, खुसरो अपने–अपने कथ्यों के माध्यम से अपनी उपस्थिति बनाए हुए हैं, यह जन मूल्यांकन में अहसास किया जा सकता है। इन काल खंडों के कवियों की कालजयिता आज भी अनुकरणीय बनी हुई है। विभिन्न विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रमों के अंतर्गत उनकी स्वीकार्यता उनके सार्वभौमिकता को बताती है, जो यथार्थता का पर्याय है। हाँ कल्पनाशीलता, अभिव्यंजना, गल्प, विवेचना, विवरण, संवेदनशीलता का अंकन/चित्रण/आरेखन रचनाकार द्वारा शब्द गुणों तथा शब्द शक्तियों के माध्यम से किया जाता रहा है। आज के परिदृश्य में यह कोई नया शब्द नहीं है। हाँ कुछ नव साहित्यकारों ने अपनी पहचान को विशेषी कृत करने हेतु जिस प्रकार से विविध विमर्शों का प्रचालन किया है, यथार्थ का नव–उद्भव उसी का एक हिस्सा मात्र है और कुछ नहीं। समकालीन काव्यधारा में आप यथार्थ को किस दृष्टि से देखते हैं?विशेषकर ऐसे समय में जबकि लोग साहित्य से ही सब कुछ पाने की अपेक्षा कर रहे हैं?

अनिलजी, सबसे पहले तो समकालीनता को ही परिभाषित करने की आवश्यकता है। वस्तुतः काव्य आंदोलन में समकालीनता एक युगबोध को, एक कालखंड को निरूपित/व्यंजित करता है। 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ प्रेमचंद की अध्यक्षता में लखनऊ में हुई। बैठक सभा में रचनाधर्मियों द्वारा स्वयं के लिए निर्धारित मानकों एवं भारतीय साहित्य को विश्व साहित्य के साथ जोड़ने के प्रयासों को प्रमुखता से सूचीबद्ध किया गया। यहीं से उत्तर छायावाद जो कि बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल अंचल तथा जानकीवल्लभ शास्त्री, शिवमंगल सिंह सुमन के सहभागिता में एक नवीन आंदोलन के रूप में आता है और यहीं से निराला को अपना आदर्श मानते हुए काव्य की एक नवधारा का सूत्रपात होता है, जो केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह के प्रतिनिधित्व में प्रगतिशील काव्य आंदोलन के रूप में मानी जाती है। यह धारा अज्ञेय के द्वारा तारसप्तक व प्रतीक के संपादन के साथ प्रयोगवादी काव्य आंदोलन में परिवर्तित हो गयी, जहाँ इसमें रामविलास, प्रभाकर माचवे, गिरिजा प्रसाद माथुर, भवानी प्रसाद मिश्र आदि की भूमिका प्रमुख रही। जगदीश गुप्त के नई कविता नाम देने तक यह आंदोलन अबाध गति से चलता रहा। इसी के समानांतर नवगीत का आंदोलन भी सत्वर गति से आगे बढ़ती रही, जिसमें कोशी की 'नवगीत की नौका' गोष्ठी 1951 तथा 1953 में 'गीतम' का प्रकाशन वीरेन्द्र मिश्र द्वारा तथा साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद में नए क्राफ्ट पर सेमिनार में वीरेन्द्र मिश्र का काव्यपाठ व आलेख पाठ प्रमुख रूप में देखा जा सकता है। 1958 में गीतांगिनी द्वारा राजेन्द्र प्रसाद सिंह तथा 1964 में 'कविता 64' द्वारा ओम प्रभावर ने इस आंदोलन को आगे बढ़ाया। इसी के साथ–साथ नयी कविता के उपरांत साठोत्तरी कविता तथा उसके बाद समकालीन काव्य की स्थिति आती है। अनिलजी आप किस समकालीनता की बात कर रहे हैं। कालखंड या युगबोध को प्रदर्शित करती काव्य रचनाएँ या आज के संदर्भ को व्यंजित करता काव्यलोक।

यदि संदर्भ आज का है, तो आज का काव्य परिवेश यथार्थ का आग्रही है। वह यथार्थतन केवल कथ्य में वरन् शिल्प, भाषा, भाव, प्रतीक, बिम्ब, शैली सबमें यथार्थता का अनुमोदन माँगता है। दूसरे शब्दों में इसे नवता का पर्याय भी कह सकते हैं। जो यथार्थ को विशेषताओं, इसके प्रारूपों व इसकी विवेचनाओं को नहीं पकड़ पाएगा, वह स्वयं को अधिक दूर तक जाने की ऊर्जा नहीं दे सकता। वह पुरातन व अतीत में खो जाने की भयावहता से भी अनुप्राणित हो सकता है। अतः यथार्थ प्रमुख माँग है, जो रचनाकार के लिए परम आवश्यक है।

स्वतंत्रतापूर्व के हिन्दी साहित्य में किस तरह की स्थितियाँ कथ्य में रहीं, क्या आज के साहित्य का मूल स्वर राष्ट्रीय चेतना से आगे कुछ कहने में सक्षम हो सका है?

स्वतंत्रतापूर्व के हिन्दी साहित्य में इसका प्रमुख स्वर, शोषण, दमन, अशिक्षा, बेकारी, गरीबी के प्रति आक्रोश के रूप में रहा। उस काल में साहित्यिक चेतना से अनुप्राणित रचनाधर्मियों की पुस्तकों, पत्रिकाओं, पत्रों को जब्त करने से लेकर उन्हें जेल भेजने तक की घटनाएँ सामने आती हैं। हिन्दी साहित्य के समानांतर चलनेवाली अन्य साहित्यिक धाराओं–आंदोलनों ने भी इस तरह के कार्यों में बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया। बांग्ला साहित्य, मराठी साहित्य, अवधी व ब्रज जैसे आंचलिक भाषाओं के साहित्य में इस तरह की रचनाधर्मिता की छाप देखी जा सकती है। यह बात अलग है कि उनमें से बहुत कुछ अब भी शोध, अनुसंधान, प्रकाशन, प्रसारण की बाट जोह रहा है।

स्वतंत्रतापूर्व के गद्य साहित्य में नई जोश व उमंग देखने को मिलता है। काव्य में इसकी विभिन्न धाराओं में से मंच की धारा तो विपुल रूप से राष्ट्रवादी रचनाओं की वाहक रही। वहीं अकादमी काव्यधारा के प्रवर्तकों ने उस समय अपनी सामर्थ्य भर लेखन किया। अज्ञेय अपने लेखन के कारण ही जेल में ठूँस दिए गए। जैनेन्द्र ने उनकी प्रथम कहानी प्रकाशन में प्रेमचंद को उनका उपनाम 'अज्ञेय' अंग्रेजों के दमनकारी नीतियों से बचने के लिए सुझाया था।

स्थितियाँ आज भी कमोबेश वैसी ही हैं। मंच व गंभीर लेखन के प्रति राष्ट्रवाद जहाँ काव्य में झूल रहा है, वहीं गद्य में यह वामपंथ एवं दक्षिणपंथ की खाँचों में विभक्त हो सिसक रहा है। आज राष्ट्र या राष्ट्रधर्म की बात कहनेवाला साहित्य के बँटे हुए गिरोहों के मध्य में अस्पृश्य हो जाता है। परंपरा आज तिरोहित की जा रही है। अतीत को कोशना फैशन बन गया है। नैतिकता का श्राद्ध करनेवाले कुछ गिरोहबद्ध रचनाकारों ने नग्नता की अपनी पहचान बना ली है। अनिलजी, आज का परिदृश्य विषाक्त हो गया। जीवन–मूल्यों की बात करनेवाला आज प्रतिबद्ध नहीं है, बल्कि धर्म, सभ्यता और संस्कार को गाली देनेवाले महामंडित हो रहे हैं। साहित्य के इन सरोकारों के आधार पर व्यक्ति, समाज, समूह, समुदाय, कवि, लेखक ही नहीं, बल्कि संस्थाएँ, सरकार, सत्ता में भी अलग–अलग बँटवारा हो गया है। चयन व वितरण के मानदंड रचनापरक नहीं, वरन् व्यक्तिपरक हो गया है। तबसे अबतक हमने इतनी प्रगति की है, अनिलजी!

डॉ. शुक्जी, आपकी दृष्टि में जनसामान्य की अपेक्षाओं को यथार्थ–धरातल पर रखने का प्रयास साहित्य की किस विधा में सबसे अधिक दिखाई देता है?

अनिलजी! विधा का चयन न केवल रचनाकार का विशेषाधिकार है, वरन् यह कथ्य केन्द्रित भी होता है। कहानी, लघुकथा, उपन्यास–तीनों का शिल्प अलग–अलग होते हुए भी मूल में सूक्ष्म से विराट की ओर एक यात्रा है। इसी तरह से हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं और रूपों के लिए कहा जा सकता है। कविता, कहानी, लघुकथा, लेख, साक्षात्कार, जीवनी, डायरी, आत्मकथा, यात्रावृत्त, संस्मरण, रिपोर्ताज, निबंध पत्र, समीक्षा आदि सभी विधाएँ अपने आप में पूर्ण भी हैं, संबंधित भी हैं तथा अवलंबित भी हैं। यथार्थ के धरातल पर विधा की कसौटी रचनाकार की दक्षता पर निर्भर करता है। एक लोक गायक जन–जन का नायक होता है। प्रेमचन्द जैसा कालजयी रचनाकार हो, तो कहानियाँ युग प्रवर्तक ही होंगी। निराला का स्पर्श पाकर शब्द आंदोलन बन जायेंगे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल की लेखनी ही तो आलोचना, निबंध व इतिहास वार्तालाप करते नजर आयेंगे। प्रसाद की कलम ऐतिहासिक पात्रों को नाटकों से न केवल जीवित करती हैं, वरन् कामायनी जैसी कृति द्वारा युगप्रर्वतक महाकाव्य का सृजन करती है।

ये सभी रचनाएँ यथार्थ के धरातल पर संदर्भित हैं। अनिल जी विधा नहीं, कथ्य–शिल्प व शैली के साथ–साथ रचनाकार की योग्यता, क्षमता, दक्षता, प्रयोगकारिता सभी कुछ मिल कर प्रभावी व श्रेष्ठ बनते हैं। यदि आप मेरी दृष्टि से इसका उत्तर चाहते हैं तो यह कविता में ज्यादा सहज रूप से संभव है।

आज का साहित्य विभिन्न अर्थों में बँटा हुआ है। इस स्थिति में आलोचना विधा के भविष्य को लेकर आप क्या कहना चाहेंगे?

मैं आपके प्रश्न की भाषा से सहमत नहीं हूँ, मित्र! साहित्य ज्ञान का अखण्ड स्वरूप है और ज्ञान विभाजित नहीं किया जा सकता। हाँ, अपनी सुविधा और अवसरवादिता के कारण कुछ साहित्यकारों ने अपने–अपने गिरोह बना लिये हैं। विभिन्न पंथों, वादों, ध्रुवों, खण्डों, क्षेत्रों, अंचलों, जातियों, सम्प्रदायों, समूहों, प्रान्तों के नाम, स्थान व स्वरूप में बँटे रचनाकारों ने आज अपने कृत्यों से साहित्य को न केवल मर्माहत किया है, अपितु शर्मिन्दा कर आहत भी किया है। आज पत्र–पत्रिकाओं के निर्धारणकर्ता में गिरोह बंद रचनाकार/संपादक/प्रकाशक/आलोचक/प्राध्यापक हो गये हैं। देश के विश्वविद्यालयों का उत्तर या दक्षिण खेमों में बाँटना किस कोण से सही कहा जाएगा। लेखन से लेकर संपादन, समीक्षण, प्रकाशन तक में साहित्य के ये एजेंट सक्रिय हैं। विभागीय नियुक्तियों से लेकर प्रोन्नति तक में इनकी दादागिरी चलती है। अब इस स्थिति में भयावहता का अंदाजा आप बखूबी लगा सकते हैं, अनिलजी!

आपके प्रश्न के दूसरे भाग आलोचना पर विचार करने पर वह अपने परिवेश से प्रभावित/संक्रमित है। आज आलोचना प्रायोजित हो गयी है। बनारस हिन्दी विश्वविद्यालय के ख्यातिलब्ध महान साहित्यकार व रचना, शोध, आलोचना के शिखर हजारी प्रसाद द्विवेदीजी अपने रचनाधर्मिता के लिए समर्पित रहे। आलोचना में पारदर्शिता के पक्षधर द्विवेदीजी ने नये प्रतिमानों का सृजन किया। बाद के कालखंडों में उन्हीं के प्रिय शिष्य नामवर सिंह ने सारे परिदृश्य का वितान ही बदलकर रख दिया। क्या कविता, क्या कहानी सभी कुछ नव्यता के पक्षधरों में अपने ढंग से व्यंजित करने में पूरे मानकों को प्रतिष्ठापित कर दिया। काव्यशास्त्रा को निकालकर समाजशास्त्र का प्रयोग, नैतिक मूल्यों की जगह पर यथार्थ के गोपन पलों का वीभत्स चित्रण बन गया है। और तो और लेखक, कवि अपनी शर्तों पर समीक्षा लिखने–लिखवाने लगे तथा प्रकाशक उसे अपने मानकों पर छापने लगे। पत्र–पत्रिकाओं ने खुले तौर पर साहित्यकारों व विधाओं का बहिष्कार कर रखा है। ये सभी कुछ क्या गौरव के विषय हो सकते हैं।

नहीं, कदापि नहीं। तो आलोचना को नये उपकरणों व मानकों पर आधारित कर इसे इसके समय स्वरूप में स्वीकार यदि नहीं किया जाता तो यह विधा मृत हो जाएगी, इसमें कोई संदेह नहीं।

कहीं ऐसा तो नहीं कि आलोचना का ही अंत होनेवाला हो?

भाई, कभी भी बीज का नाश नहीं होता। जिस प्रकार बादलों के ढहने पर सूर्य देदीप्यमान हो उठता है, जिस प्रकार राख हटने पर दहकता हुआ कोयला अंगारे के समान उद्भासित हो उठता है, ठीक उसी प्रकार से जब प्रायोजन का तिलस्म टूट जाएगा, जब गिरोहबंदी की जंजीरें छूट जाएगी तथा जब पारदर्शी व तस्टस्थ आलोचना की आवश्यकता होगी, तब वह अपने मूल को लेकर उपस्थित हो उठेगी।

अनिलजी! आज भी सच्चे, खेमा–रहित आलोचक हैं, पर वे सामने नहीं आ पा रहे हैं। एक बात और आलोचना की विधा में कलम चलाकर श्रेय एवं प्रेय प्राप्त करनेवाले रचनाकार जब स्वयं विधा और साहित्य से ऊँचे हो जाते हैं, तब यह समस्या ज्यादा विकराल होने लगती है। मान–सम्मान, पद–प्रतिष्ठा जिस विधा ने लोगों को प्रदान किया, बाद में उन्होंने अपने आपको स्वयं भू–साहित्यचिंतक, निर्माता, विचारक, विद्वान घोषित कर दिया। ऐसे छद्म विद्वानों ने आज स्थिति लाने के दोषी हैं। विभिन्न तरह की संस्थाओं, विश्वविद्यालयों, अकादमियों, पुरस्कार समितियों आदि में इनकी सक्रियता साहित्य व साहित्यकारों के लिए प्रेरक न बनकर अभिशाप बनता जा रहा है।

इसके बाद भी आलोचना का भविष्य उज्ज्वल है, ऐसा मेरा प्रबल मत है। वर्तमान में साहित्य के संदर्भ में यदि विमर्शों की बात की जाए, तो क्या साहित्य को विभाजित करना उचित है?

भाई अनिलजी! आपके इस प्रश्न का उत्तर मैंने प्रकारांतर से पूर्व प्रश्नों का उत्तर देते हुए काफी हद तक देने का प्रयास किया है। विमर्श स्वयं को अलग पहचान देने की कोशिश मात्र है और कुछ नहीं। मेरे विचार से साहित्य का यह विभाजन साहित्य का नहीं, वरन् साहित्यकारों का है। लोगों ने स्वयं के लिए केन्द्र व परिधि का निर्धारण कर उसके अनुरूप दायरे में बँधकर साहित्य लेखन का निश्चय किया है।

जब हम स्त्री–विमर्श की बात करते हैं, तो इसका दो अर्थ हो सकता है। पहला स्त्री व स्त्रीजन्य संवेदनाओं का केन्द्र में रखकर लेखनकर्ता तथा दूसरा अर्थ होता है स्त्री लेखिकाओं का समूह। पहला अर्थ समग्र है तथा दूसरा अर्थ संकुचित। यही अभिप्राय दलित विमर्श को लेकर भी किया जा रहा है।

अनिलजी! साहित्य का विभाजन वह चाहे विषय, कथ्य, शिल्प,

शैली, भाषा, जाति, पंथ, अंचल, सम्प्रदाय किसी भी को लेकर ही स्वीकार नहीं किया जा सकता। अब तो यह पुरातन व नवीन में भी बँट रहा है। विमर्श शब्द अपने आपमें बहुत भ्रामक है और उससे भी विचित्र इसका साहित्य में विभाजन हेतु प्रयोग। मैं यह विभाजन किसी भी कोण से उचित नहीं मानता। डॉ0 जयशंकर शुक्लजी तो फिर भी स्वानुभूति और सहानुभूति के प्रश्न पर आपका क्या विचार है, क्या ये साहित्य में प्रासंगिक हैं?

अनिल कुमार पाण्डेय जी आपका प्रश्न एक बड़े बहस को जन्म देता है। वास्तव में ये दोनों शब्द अपने साथ एक विचार, एक परंपरा तथा एक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते हैं। शाब्दिक अर्थ ग्रहण करें तो स्वानुभूति जहाँ एकांगी है, निजी है, व्यक्तिगत! व्यवहारगत हैं, वहीं सहानुभूति सापेक्ष है, सार्वजनिक है और समष्टिगत है। साहित्य मूलतः इन्हीं दोनों का समुच्चय है। प्रारंभ से ही साहित्य इन्हीं दोनों शब्दों पर टिका हुआ है।

संपूर्ण वैदिक व उत्तर वैदिक वाङ्मय स्वानुभूति पर निर्भर करता है, लेकिन जब हम उसकी व्याख्या करते हैं तो वह अपने विशद संदर्भों में हमारे सामने व्यंजित होता है। मूलतः वह परंपरा आज भी उसी रूप में जारी है। लेखक अपने अनुभवों से ही अपने रचना संसार का सृजन करता है। स्वानुभूति इस मायने में विशेष प्रभावी हो जाती हैं। सत्य को हम अनुभव कर सकते हैं, यह शब्द में नहीं, वरन् अर्थ में होता है। अनुभव को ही स्वानुभूति कह सकते हैं। व्यापक फलक पर हमारा चिंतन हमारे 'स्व' से प्रारंभ होकर 'पर' पर विराम पाता है।

एक लेखक को इन दोनों के मध्य संतुलन स्थापित करना अति आवश्यक होता है। हमें क्यों लिखना है, यह जानने से पूर्व क्या नहीं लिखना है, इसे जानना ज्यादा जरूरी है। इसी तरह से विचार के धरातल पर भी जाने हैं। भाई! सहानुभूति हमारी आपके साथ हो सकती है, लेकिन स्वानुभूति तो हमारी अपने साथ ही होगी; हाँ, प्रेरक के रूप में अन्य उपादान हो सकते हैं। डॉ. साहब क्या साहित्य में रोजी रोटी के अतिरिक्त भी कुछ है, जिसे संदर्भित करने की आवश्यकता हो?

मित्र! आपका प्रश्न समीचीन तो है, पर इसकी भाषा अधूरी है। 'रोजी रोटी का साहित्य में संदर्भ'–इस वाक्यांश का स्वयं संदर्भ निश्चित करना होगा। भाई साहित्य में स्वप्रेरित रोजी रोटी, विषय के रूप में रोजी रोटी अथवा साहित्य में रोजी रोटी, लेखन, संपादन, प्रकाशन, विपणन द्वारा रोजी रोटी यह स्पष्ट नहीं किया आपने। खैर, मैं दोनों ही दृष्टियों से इसका उत्तर देना चाहूँगा। प्रथम में दोनों विधाओं में रचनाकार विषय चयन में रोजी रोटी को केन्द्र में रखकर लेखन करें अर्थात् औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, आधुनिकीकरण आदि पर केन्द्रित विषय–वस्तु का चयन, विवेचन तथा लेखन। इसी के साथ इन प्रतिवादी सोपानों के कारण गाँवों का क्षरण, समाज का टूटन, नये समाज का निर्माण, परिणामस्वरूप संस्कृतियों का टकराव, सेक्स व हिंसा का नवीन आगाज, परिवार नामक संस्था का टूटन, तलाक, सहवास संबंध (सपअम पद), अनाचार, अत्याचार, व्यभिचार को नये आयाम देती व्यवस्था उक्त सभी रोटी से ही जुड़ती नजर आती है। ऐसे में हम यदि युग, देश, काल, परिस्थितियों के अनुसार लेखन करते हैं, तो उस साहित्यरूपी दर्पण में समाज अपना स्वयं का चेहरा देख सकता है। यदि लेखन व लेखक की सफलता का राज भी है, तो भाषा, शिल्प, विचार सभी कुछ आज के हिसाब से होना चाहिए।

पुरातन का मिथ्या दंभ व जयगान अप्रासंगिक व त्याज्य है, अतीत पर गर्व करें, पूजें, पर लेखन में सोच–समझकर प्रयोग करें। रोजी रोटी जैसे शब्द के द्वारा आपने विषय वस्तु संबंधी बात करने को मुझे विवश किया आभार! दूसरे पलक पर साहित्य के द्वारा कमाई यह लेखन, संपादन, प्रकाशन, पुरस्कारादि के द्वारा देखा जा सकता है। मित्र, साहित्य को प्रासंगिक रहना है, लेखन व लेखक को टाइम साहित्य सेवा करके परिवार का भरण–पोषण करना है, यह सुनिश्चित किया जाना जरूरी है। जापान, जर्मनी, फ्रांस जैसे देशों में एक शोध–आलेख छप जाने पर लेखक को इतना कुछ मिलता है, जिसके प्रभाव से वह वर्ष भर अपना जीवन यापन आर्थिक रूप से कर सकता है। अंग्रेजी भाषा के लेखक व लेखन आज समाज में 'आइकान' बने हुए हैं, इसी स्थिति को हिन्दी साहित्य में स्थापित करने की आवश्यकता है। रोजी रोटी के अतिरिक्त बहुत कुछ है, पर वह इसी से समर्पित व संदर्भित है। कहा भी गया है–'भूखे भजन न होय गोपाला।'

डॉ. साहब! आज बहुत–से रचनाकार गुमनामी में खो रहे हैं, गुमनाम हो रहे हैं, यदि ऐसा है तो इसकी वजह क्या है?

अनिल कुमार पाण्डेयजी! आपके प्रश्न का उत्तर देने के पूर्व मैं एक शोध–निष्कर्ष की चर्चा करना चाहूँगा। लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान वि.वि. के पूर्व कुलपति प्रो0 डॉ0 राधावल्लभ त्रिपाठी ने एक शोध किया, जिसके द्वारा उन्होंने कालिदास के समकालीन लगभग 452 कवियाँ, उनकी रचनाओं, उनकी प्रवृत्तियाँ को ढूँढ निकाला। अब उक्त शोध के आलोक में आप सोच सकते हैं कि ये गुमनामी अब या आज हो, ऐसा नहीं हैं। अब रही बात आज के कालखंड में सक्रिय/निष्क्रिय रचनाकारों के गुमनामों का तो आपके प्रश्नों का उत्तर विविध परिप्रेक्ष्यों में देना चाहूँगा।

भाई, रचनाकार या रचनाएँ कालजयी तभी होती हैं, जब वे युग की आवाज का स्वर दे, यदि तत्कालीन परिस्थितियाँ, युगानुरूप विचार शृंखलाओं, देशकाल वातावरण केन्द्रित कथ्यों, विविधतापूर्ण शिल्प तथा भाषा का प्रयोग रचनाकार करने में समर्थ है, तो वह अपनी जगह बना लेगा, इसमें कोई दो राय नहीं है। गोस्वामी तुलसीदासजी सार्वकालिक महान व विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनकी उक्त उक्ति को संदर्भ रूप में व्यक्त करनेवाले रचनाकारों को बार–बार सोचने की जरूरत है कि क्या वे दीमकों के लिख रहे हैं। स्वान्तः सुखाय का उद्घोष करनेवाले ज्यादातर लोग अपनी गुमनामी के लिए स्वतः जिम्मेदार हैं, ऐसा मेरा मत है।

लेखन के लिए विषय व विधा का चयन अत्यन्त आवश्यक है, जो श्रमसाध्य है। हम आज शार्टकट ढूँढ़ते हैं। सफलता हेतु किसी भी हद तक जाने को तैयार हैं, यहीं से हमारी दुर्गति शुरू हो जाती है। रचनाकारों का यश उनकी रचनाओं से होता है। कई प्रकाशक व संपादक या पाठक व आलोचक लेखक को उनके लेखन से ही जानते व पहचानते हैं। रचनाधर्मिता ही हमें व हमारे यश को दिग्–दिगन्त तक फैलाती है, बढ़ाती है। अर्थात् हम यदि अपनी रचनाओं के माध्यम से जाने जाएँ, तो हम गुम नहीं होंगे; परन्तु आज का परिवेश कुछ बदल–सा गया है। अब लोग तिकड़म, खेमेबाजी, पद–प्रतिष्ठा व पहुँच के द्वारा अपनी प्रसिद्धि चाहते हैं, यह मिल तो जाती है शीघ्र ही, पर उतनी ही शीघ्रता से समाप्त भी हो जाती है। हमारा तटस्थ मूल्यांकन हमारी रचनाओं और कृतियों से ही होता है।

इसके पक्ष में तर्क के रूप में कबीर को लिया जा सकता है। कई शताब्दियों तक गुमनामी में खोये रहनेवाला, युगसुधारक, युगप्रवर्तक रचनाकार अँधेरे में, गुमनामी में ही खोया रहा। उनको समाज में लाने का श्रेय जार्ज ग्रियर्सन को जाता है, जिन्होंने उनके शब्दों, साखियों, रमैनियों का संकलन करके उनपर आलोचनात्मक दृष्टि से एक पुस्तक लिखी। हम शुरूआत नहीं करना चाहते, बल्कि हम भारतीयों की अनुकरण की आदत है। कुछ विशेष परिस्थितियों में हम किसी सत्य को तब मानते हैं, जब पश्चिम में बैठा कोई व्यक्ति उसे अनुमोदित कर दे। यह स्थिति हमारे लिए व हमारे साहित्य के लिए घातक है। बाद में महामना मदन मोहन मालवीय के आह्वान पर शांति निकेतन छोड़कर आप हिन्दी के उद्भट विद्वान हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी कबीर नामक पुस्तक उनपर केन्द्रित लिखी और फिर लाइन लग गयी, उनके वंदन, अभ्यर्चन की। निरालाजी को हम समग्र रूप से जान पाए, इसके लिए हमें जानकी वल्लभ शास्त्री और रामविलास शर्मा का धन्यवाद करना चाहिए। बच्चन को हम अजीत कुमार की दृष्टि से देखते हैं।

अनिल! यह विशद विषय है, जिसपर पूरी पुस्तक लिखी जा

सकती है। हाँ, शोध व अनुसंधान में लगे लोगों की जिम्मेदारी भी बनती है, जिससे वे बच नहीं सकते। रचनाकार अपना लेखन करने के साथ–साथ उसके प्रकाशन के प्रति सजग रहे और शोधार्थी मूल्यांकन हेतु तत्पर। मेरी अपनी मान्य है कि शोध विकास कमेटियों में विषयों का सूचीबद्ध करने में विषय विशेषज्ञों की मदद ली जानी चाहिए। जैसा कि अन्य विषय विभागों में है, तभी हम भाषा, विचार व रचनाकार को गुमनामी से बचा पायेंगे।

डॉ. शुक्लजी आपके रचना फलक को देखते हुए यह पता चलता है कि आपने नवगीत, कहानी, उपन्यास, लघुकथा, साक्षात्कार, समीक्षा, संस्मरण, यात्रावृत्त जैसे विविध विषयों पर प्रचुर लेखन किया है। पर मूलतः आप कवि हैं और यह प्रश्न समीचीन है कि कविता धीरे–धीरे अपना अर्थ खोती जा रही है, आपका क्या मत है?

भाई साहब! पूरी विनम्रता एवं आदर के साथ मैं आपकी बात स्वीकार करता हूँ और यह भी स्वीकार करता हूँ कि इस लेखन संसार को विकसित करने में आप जैसे लोगों का विशेष योगदान है। जिनके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ तथा हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। मेरा लेखन वह है, जो करवा लिया गया है। कुछ परिस्थितियों तथा कुछ माँग ने मुझे सदैव लेखन हेतु प्रेरित किया। पत्र–पत्रिकाओं ने संपादकों–प्रकाशकों ने, पाठकों व रचनाकारों ने अलग–अलग ढंग से सरोकारों पर आधारित मेरे लेखन को सदैव गतिमान रखने में सहयोग किया। आज आपके माध्यम से मैं उन सभी का आभार व्यक्त करते हुए धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

मेरा अपना मानना है कि उक्त वर्णित विविध समूहों, संस्थाओं, व्यक्तियों का ऋण है मुझपर, जिसको कुछ हद तक नई प्रतिभाओं का सहयोग कर उतारा जा सकता है और मैं इसके लिए पूरी तरह कटिबद्ध भी हूँ। यथासंभव इस तरह के प्रेरणा, परामर्श, संशोधन आदि के द्वारा मैं अपने रचनाकार को निरंतर नवता से जुड़े रहने का संयोग उपलब्ध कराता रहता हूँ। इस तरह की शाश्वत परंपरा साहित्य को मजबूती प्रदान करता है।

यह तथ्य सूर्य की रश्मियों जैसा अकाट्य है कि मैं मूलतः कवि हूँ, गीतकार हूँ। अनिलजी, हमारे देश में कवि के लिए कई तरह की उपमाओं का प्रयोग किया जाता है।

कविताएँ

डॉ0 अवधेश कुमार चन्सौलिया,
प्राध्यापक हिन्दी,
डी.एम. 242 दीनदयालनगर,
ग्वालियर (म.प्र.) 09425187203

नेह का निमंत्रण

मौसम हैं गाये
तराने नये
सुन नदियों के सुरभि
शरमा गये
गली–गली रोमांचित
घास भी प्रसन्न है
खेतों में झूम रहा
मस्ती में अन्न है
पियराई सरसों के
ओंठ भी अगन भये
पतझड़ की क्रोड़ में
वासंती सिहरन
मन मयूर नाच रहा
साथ लिए थिरकन
कलियों के बुझे मन
फूल–फूल–फूल भये
खबर दी भौंरों ने
वसन्त आगमन की
कोयल ने हर ली
शोभा आम्रवन की
अनंग की मार से
अंग–अंग सुर्ख भये
मदहोश जग है
मधु की खुमारी में
आँखों की लालिमा
डोलें कुमारी में
नेह के निमंत्रण
पग–पग प्रगाढ़ भये।

2. रामचरन

बूढ़े बरगद–सा
आँगन में
गुमसुम बैठा रामचरन
पतझर का पत्ता
बन भटकै
गली–गली में रामचरन
न आषाढ़ न भादों बरसा
न भयी महावट गीली
ऊसर के मरियल से गेहूँ
झेल रहे बरसा पथरीली
दाना सब ले गया महाजन
अधपेटा, अधनंगा सोये
बरसों से वो रामचरन
छः बीघे की खेती–बाड़ी
पाँच पड़ी है बंजर
बैलों में खुरपका सामानों
डेगूँ का बदसूरत मंजर
झुर्रीदार छुहारा चेहरा
घिसे पीटे दर्पण में देखे
तीस बरस का रामचरन
रूपा की शादी करनी है
चंपा का भी गौना
अभी–अभी ले गया महाजन
गैया–गोरू और भगौना
बथुआ रोटी की छीना–झपटी
टुकुर–टुकुर एकटक, देखत है
बुझता चूल्हा रामचरन।

3. मुद्दतों के बाद

धूप कुछ अच्छी लगी है
गीत गुनगुनाने लगी है
आस्मां स्वच्छंद होकर
पंख फैलाने लगा है
रात की गहराइयों से
विश्व अब जागने लगा है
मुद्दतों के बाद
आस भी जगने लगी है
आँख खोली पंखुरी ने
बात कुछ आगे बढ़ाने
आ गये मध्यस्थ बन
मित्र कुछ उसके पुराने
वायु ऐसी बह रही है
मानो बहन उसकी सगी है।

आलेख

कोरोना वायरस (कोविद-19)

बिरजू कुमार
भागलपुर
7004435995

कोरोना वायरस (कोविद–19) एक अति–सूक्ष्म लेकिन खतरनाक वायरस है। इसका आकार मानव के बाल की मोटाई से 900 गुना छोटा है। यह वायरस जानवरों से मानव में फैलता है और प्रभावित मनुष्य के श्रवन तंत्र को बुरी तरह से कमजोर कर देता है। यदि कोरोना से प्रभावित मनुष्य की रोग प्राण घातक सिद्ध होता है। यह बिमारी एक व्यक्ति से दूसरे के खांसने या छींकने से निकले थूक के बेहद बारीक कण हवा में फैल जाते है। इन कणों में कोरोना वायरस (कोविद–19) के विषाणु होते हैं। संक्रमित व्यक्ति के नज़दीक जाने पर ये विषाणुयुक्त कण सांस के रास्ते आपके शरीर में प्रवेश कर सकते हैं। मनुष्य कोरोना की उत्पत्ति सबसे पहले 1930 में एक मुर्गी में हुई थी और इसने मुर्गी के स्वसन प्रणाली को प्रभावित किया था और आगे चलकर 1940 में कई अन्य जानवरों में भी पाया गया। इसके बाद सन् 1960 में एक व्यक्ति में पाया गया। इन सब के बाद दिसम्बर 2019 में इसका विकराल रूप चीन में देखा गया जो अब धीरे–धीरे पूरे विश्व में फैलता जा रहा है। माना जा रहा है कि कोरोना वायरस (कोविद–19) चीन में वूहान प्रान्त में जानवरों के बाज़ार से मानवों में आया। विश्व स्वास्थ्य संगठन के कोरोना वायरस (कोविद–19) के लक्षण (करोना वायरस सिंप्टम्स) बताये है : बुखार, गले में खराश और सूखी खांसी, सांस लेने में समस्या (गंभीर मामलों में) फ्लू और कोल्ड के सामान्य लक्षण डायरिया और उल्टी, थकान, शरीर और सिर में दर्द कोरोना वायरस (कोविद–19) बीमारी संक्रमित व्यक्ति के खांसने या छींकने से निकले थूक के बेहद बारीक कण हवा में फैल जाते है। इन कणों में कोरोना वायरस (कोविद–19) के विषाणु हैं। संक्रमित व्यक्ति के नज़दीक जाने पर ये विषाणुयुक्त कण सांस के रास्ते आपके शरीर में प्रवेश कर सकते हैं।

इंसान के फेफड़े से ऑक्सीजन शरीर में पहुंचना शुरु होता है जबकि कार्बन डाई–ऑक्साइड शरीर के बाहर निकलता है। लेकिन कोरोना के बनाए छोटे–छोटे एयरसैक में पानी जमने लगता है और इस कारण आपको सांस लेने में तकलीफ होती है और आप लंबी सांस नहीं ले पाते। ऐसे में मरीज़ को वेन्टिलेटर की ज़रूरत पड़ती है और समय पर मेडिकल सहायता न मिलने पर मौत भी हो सकती है।

अभी तक कोरोना वायरस (कोविद–19) से बचाव का वैक्सीन नहीं बना है लेकिन अमेरिका, यूरोप और भारत सहित सभी देशों के डॉक्टर्स कोरोना के इलाज और इसकी वैक्सीन बनाने के लिए अनुसंधान कर रहे हैं। फिर भी ऐसा माना जा रहा है कि कोरोना वायरस (कोविद–19) की वैक्सीन बनाने में 6 महीने से लेकर 1 साल तक का समय लग सकता है। कोरोना वायरस (कोविद–19) बीमारी (कोरोणवीरस डिसीज़) से खुद को बचाने के लिए हाइजीन का पूरा ख्याल रखें। इसके साथ ही कुछ उपाय है जिन्हें अपनाकर आप कोरोना वायरस (कोविद–19) की रोकथाम कर सकते हैं।

कोरोना वायरस (कोविद–19) संक्रमण से बचने के लिए अपने हाथों को सैनिटाइजर (सनीटीज़ेर) या फिर हैण्डवॉश और पानी से कम से कम 20 सेकंड तक धोएं। कोरोना वायरस (कोविद–19) के रोकथाम के लिए जब आप बाहर से घर वापस आए तो सबसे पहले अपने हाथ धोएं। अगर आप बाहर है तो सैनिटाइजर का यूज करें। मास्क पहनें। इसके साथ ही छींक आते समय टिशू से मुंह को ढक लें। जिससे कोई दूसरी व्यक्ति इससे संक्रमित न हो। उपयोग की गई टिशू को तुरंत डस्टबीन में डाल दें और अपने हाथ को धो लें। अच्छी तरह से पका हुआ खाना ही खाए। विशेष रूप से घर पर ही रहें। अगर आपको बुखार,खांसी, जुकाम हो या फिर सांस लेने में समस्या हो रही है तो तुरंत डॉक्टर से संपर्क करें। इस प्रकार कोरोना वायरस (कोविद–19) एक वैश्विक महामारी है जिसे पूरी गंभीरता से लेना आवश्यक है। अभी तक इसकी कोई वैक्सीन या दवाई उपलब्ध ना होने के कारण इससे बचाव ही एक मात्र उपाय है।

अत: चिकित्सकों द्वारा बताए गये कोरोना से सुरक्षा के उपायों को अपनाना हमारे स्वयं के प्रति और समाज के प्रति जिम्मेवारी है और हमें एक जिम्मेवार नागरिक का कर्तव्य निभाते हुए घर में ही रहते हुए इस महामारी के संक्रमण को रोकना है।

लोकवाणी

हिन्दी साहित्य पत्रिकाओं का प्रकाशन और संपादन आजकल जीवन के हर क्षेत्र में बाजारवाद के हाबी हो जाने के कारण कठिनाइयों की दृष्टि से अपने शैशवकाल में लौट गया है, जब साहित्यनुरागी मेरे साहित्यिक प्रतिभा के धनी भारतेन्दुजी साहित्यिक पत्रिकाओं के अस्तित्व को बनाये रहने के लिए कठिन आर्थिक संकटों से जूझते हुए पत्रिकाओं का अस्तित्व बनाए हुए थे।

आज यह संकट और भी घना हुआ है। कुछ पत्रिकाओं को राजकीय तो कुछ को राजनैतिक संरक्षण प्राप्त हो जाता है और वह उन्हीं की गाइड लाइन पर कथित साहित्यिक पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। तो आज जो हिन्दी साहित्यिक पत्रिका बिना किसी संरक्षण और बिना व्यावसायिक विज्ञापन के अपना अस्तित्व बनाए हुए 'सुसंभाव्य' जैसी पत्रिका में कुछ तो ऐसा होगा, जिससे बौद्धिक वर्ग के लेखक और समीक्षक उससे जुड़कर स्वयं को आत्मसंतुष्ट तथा गौरवान्वित महसूस करते हैं।

समीक्षात्मक लेख इस पत्रिका की सबसे बड़ी विशेषता है और इस पत्रिका के ये लेख हिन्दी के शोध छात्रों के लिए लाभकारी होते हैं, पिछले कई अंक मुझसे कई हिन्दी के परास्नातक छात्र माँगकर ले गये और मुझे एक आत्मसंतुष्टि हुई इस पत्रिका से जुड़े होने के लिए।

रचनाओं के चयन और प्रकाशन के लिए संपादक महोदय दयानंद जायसवाल जी को हार्दिक साधुवाद!

मनोरंजन सहाय, जयपुर राजस्थान, मो.–9351288071

हिन्दी समीक्षक, अंगसपूत दयानन्द बाबू स्वयं एक समीक्षा

बेहतरीन कार्य का संचालन, संपादन और प्रसाद की जिम्मेवादी से सुसंभाव्य को कंधों पर लेकर दयानंद जायसवालजी ने उत्कृष्ट व सराहनीय कार्य किया है। इस कार्य की जितनी भी प्रशंसा करूँ, कम है। यूँ तो हिन्दी सेवा के तहत हर तीन माह पर सुसंभाव्य का प्रकाशन करना अपने आपमें गर्व की बात है, लेकिन इसका मुफ्त में वितरण देश में ही नहीं, अपितु विदेशों तक मे कर अंग की भूमि को अपने गौरव व सच्चे हिन्दी सपूत होने का एहसास कराया है। ऐसे विद्वान का देश के कोने–कोने में भूरि–भूरि प्रशंसा तो हो ही रही है, साथ ही प्रशंसकों की संख्या भी दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इनके सुसंभाव्य की सबसे बड़ी खासियत है कि इसमें छपनेवाले रचनाकार उत्कृष्ट रचना के साथ शामिल होते हैं इस पत्रिका की गुणवत्ता अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आँकी जा रही है। चूँकि विद्वान दयानंद जायसवाल जी कई विषयों में विद्वत्ता रखते हैं। ये हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में विद्वान समीक्षक हैं और इनके पास विदेशों में रह रहे हिन्दी रचनाकार भी अपनी किताब समीक्षा के लिए भेजते जा रहे हैं। इनसे समीक्षा लिखवाने के लिए महीनों इंतजार करना पड़ता है।

इनकी समीक्षा में शब्दों की कसावट, लिखावट की परंपरा, अपनी बातों को कहने की क्षमता अद्वितीय है। प्राचार्य के पद से सेवानिवृत्त होने के बाद भी इनमें युवापन स्पष्ट दीखती है। गंभीर मगर हँसमुख स्वभाव के दयानंद जायसवाल जी साहित्यकारों के लिए एक आदर्श हैं, मगर तामझाम से कोसों दूर। इनकी साहित्य साधना अतुलनीय है। इसलिए इस राष्ट्र समीक्षक को ढेरों शुभकामनाएँ!

विभुरंजन जायसवाल, उपसंपादक,
सन्मार्ग, भागलपुर मो0–9852083288

लोग जिंदगी में जितने भी अच्छे या श्रेष्ठ कर्म करते हैं, सभी स्वयं के लिए करते रहे हैं। यहाँ तक कि परमार्थ के लिए समर्पित व्यक्ति के मन में भी या उनके अंदर अचेतन मन में भी यह बात कहीं से आ ही जाती है कि जो मैं करता हूँ आखिर इसका मूल्य या फिर फायदा क्या मिलेगा! कहीं न कहीं यह बात दीगर है कि व्यक्ति जो भी करता है, उसमें उनका कहीं ना कहीं निजी हित छिपा हुआ होता है। इससे विपरीत एक ऐसी शख्सियत जो हमारे बीच मौजूद है, जिनसे प्रतिदिन घंटों बैठकर रू–ब–रू संवाद होता है, उनकी कर्मशीलता, कर्मठता एवं उदात्तभाव देखता हूँ तो दंग रह जाता हूँ। उन्हें कहना पड़ता है कि कुदरत ने आपमें इतनी ऊर्जा इतनी चेतना एवं जीवंत जिजीविषा कहाँ से भर दिया है। बिजली सी फूर्ति आलस्य का दूर भागते रहना इन्हीं गुणों सद्गुणों के बीच एक शाश्वत खिलावट का नाम है श्रीदयानंद जायसवालजी। दयानंदजी एक मंजे हुए हिन्दी के परम सुधी समीक्षक, सिद्धचेता व्यक्तित्व जिन्हें खुद के लिए पाने की चिंता से दूर आम–आवाम की चिंता में लगे रहने की चिंता बनी रहती है। इसी ऋषिधर्मिता का व्रत पालन का संकल्प लेकर आज आठ वर्षों से लगातार 'सुसंभाव्य' हिन्दी पत्रिका के प्रकाशन निःशुल्क वितरण में लगे रहना अब यह इनकी आदत मे शुमार है और जो आदमी की आदत बन जाय किसी श्रेष्ठ कर्म के लिए तो उसके बारे में क्या कहना है। ऐसे बोधिसत्व व्यक्ति जिनके जीवन का मकसद है सिर्फ स्वयं को सन्देश की तरह बाँटना एवं बँटना यही बोधधर्मिता है। ऐसे व्यक्ति परम स्तुत्य एवं प्रणम्य है, जो सिर्फ देना ही जानते हैं। साहित्य की सेवा सबसे बड़ी सेवा है; क्योंकि बुद्ध भगवान ने कहा था–' अगर समाज, राष्ट्र एवं व्यक्ति में संपूर्ण बदलाव या परिवर्तन लाना तो असंख्य लोगों को संवेदनशील एवं चेतनशील बनाना पड़ेगा और यह तभी संभव है, जब शुद्ध एवं सिद्ध साहित्य का लगातार लेखन और वितरण हो–यह बड़ी बात है। इन बातों को बिना ध्यान में लिये स्वयं से प्रेरित होकर ऐसे चैतन्यबोधिता में जीना साहित्य के माध्यम से लोकजागरण का सुधर्म निभाना बिरले व्यक्ति से संभव है। ऐसे ही परम सिद्ध साधक हैं दयानंद जायसवाल, जिनकी साधना लगातार जारी है अपने मिशन में डूबे हुए हैं। धन्यवाद!

डॉ0 अश्विनी, मो. –9304905854

परमादरणीय सम्पादक महोदय,
श्रीदयानन्द जायसवालजी
सादर नमस्कार

आशा है आप सपरिवार स्वयं तथा सुसंभाव्य परिवार भी स्वस्थ और सानंद होंगे। अक्टूबर 2019 तथा जनवरी 2020 की पत्रिका मिली। पढ़कर में काफी प्रभावित हुआ। इसे सँवारने में साहित्यिक जगत् में विशिष्ट पहचान बनाने में आपके कुशल संपादन को साधुवाद! समीक्षाएँ, लेख तो स्तरीय रहते हैं। इसमें प्रकाशनार्थ मौलिक अप्रकाशित दो रचनाएँ, गीत और ग़ज़ल फोटो पत्र के संलग्न प्रेषित है। आशा इस बार अप्रैल की पत्रिका में लगेंगी। स्वीकृत कर पत्रिका में स्थान देने का कष्ट करेंगे।

इस पत्रिका में खुशी की बात यह है कि हिन्दी की सारी सामग्रियों के साथ–साथ अंगिका भाषा को भी स्थान मिल रहा है। जैसे सुधीर कुमार प्रोग्रामर का 'खरसूप', अशोक शुभदर्शी की कविता 'जनगी आरो अखबार' तथा छोटेलाल दास का 'मनहर छन्द' आदि। आपने मुझे दो पत्रिकाएँ दीं, सो बहुत–बहुत धन्यवाद! हिन्दी भाषा की और पूरी मानवता की सेवा करने के लिए आपका पुनः बधाई–शुभकामनाएँ के साथ!

कपिलदेव 'कृपाला'

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय
भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303